भूमि सुधार और सामाजिक परिवर्तन

गरीबी और भुखमरी दूर करने के लिए भूमि सुधारों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। भारत जैसे देश में जहां की 70 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका के लिए खेतीबाड़ी पर निर्भर है और गांवों में छोटे किसानों तथा गरीब खेत मजदूरों की बहुतायत है, जमीन ऐसी सम्पदा है जिसका उपयोग अधिक से अधिक लोगों को ज्यादा से ज्यादा लाभ पहुंचाने के लिए किया जा सकता है।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष–35, अंक 3, पौष-माघ, शक-1911

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : पुरषरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

उत्पादन अधिकारी : राम स्वरूप मुंजाल
आवरण पृष्ठों की साज सज्जा : अलका
चित्र : फोटोग्राफर–रमेश कुमार
ग्रामीण विकास विभाग से साभार

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय सूची

भूमि सुधार और सामाजिक न्याय 2
विश्वनाथ गुप्त

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार की प्रगति 6
रजनी शर्मा एवं डा. मंसूर अली

भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करना आवश्यक 8
नवीन चन्द्र जोशी

हमारा देश (कविता) 12
कु. प्रतिभा शर्मा

भूमि सुधारों की उपेक्षा से किसानों के साथ दोहरा अन्याय 13
पं. ईश्वर लाल 'वैश्य'

गैर-लाभदायक जोतों को लाभप्रद बनाएगी चकबंदी 16
डा. विनोद गुप्ता

भूमि सुधार और गरीबी उन्मूलन : क्षेत्रीय सर्वेक्षण 18
अंगसुमन बासु

माटी सोना 22
डा. वासुदेव

भूमि सुधार : कितनी प्रगति? 25
विनोद वाली

मध्य प्रदेश में भूमि सुधारों की प्रगति एवं मूल्यांकन 28
डा. हेमचंद जैन

निर्माण पथ (कविता) 31
विलास बिहारी

भूमि सुधार और सामाजिक न्याय 32
सुरेन्द्र द्विवेदी

बंजर भूमि का सुधार 35
धर्मेन्द्र त्यागी

उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण उद्योगों का विकास 38
पूरन प्रकाश पुरवार

क्षमता 42
डा. केदार राम गुप्त

ऊसर भूमि सुधार–जहां चाह वहां राह 45
डा. ओंकार सिंह तोमर एवं डा. राजेन्द्र प्रसाद

पंचायत परिषद् और नारी 47
मीता प्रेम शर्मा

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

भूमि सुधार और सामाजिक न्याय

विश्वनाथ गुप्त

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की लगभग 75 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है जो कृषि पर निर्भर रहती है। हमारी राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत भाग कृषि से ही प्राप्त होता है। इसलिए कृषि का उन्नत होना बहुत आवश्यक है। यह खेद का विषय है कि अन्य उन्नत और प्रगतिशील देशों की तुलना में भारत की कृषि बहुत पिछड़ी हुई है। इसकी उत्पादकता वस्तु कम है। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों ने ग्रामीण समाज में आर्थिक तथा सामाजिक असमानता और शोषण को जन्म दिया है अत: हमारी भूमि व्यवस्था से कृषि के पिछड़ेपन और सामाजिक अन्याय के दोष उत्पन्न हुए हैं। इन दोनों का निराकरण करने के लिए भूमि की व्यवस्था में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

कृषि का उन्नत होना तकनीकी और संस्थानात्मक—दो प्रकार के तत्वों पर निर्भर करता है। तकनीकी तत्वों से अभिप्राय बढ़िया बीजों, रासायनिक खादों, कीटाणुनाशक औषधियों, उन्नत कृषि औजारों, सिंचाई की सुविधाओं, खेती करने की विधियों आदि से है। इनसे कृषि की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

संस्थानात्मक तत्वों से तात्पर्य कृषि उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों से है। इनमें सुधार हुए बिना कृषि की उन्नति और सामाजिक न्याय की प्राप्ति संभव नहीं है। संस्थानात्मक सुधारों से अभिप्राय भूमि सुधार से ही है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भूमि सुधार से ही कृषि की वास्तविक उन्नति तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति संभव है।

भूमि सुधार के अंतर्गत जो कार्य आते हैं वे हैं:

जमींदारी प्रथा तथा बिचौलियों का उन्मूलन

हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व बहुत समय तक किसानों का जमींदारों, जागीरदारों तथा बिचौलियों द्वारा शोषण हुआ है जिससे कृषि की उत्पादकता में भारी कमी आई है। जमींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार के कारण भारतीय जनता सदैव से इस प्रथा के विरुद्ध रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब सत्ता देश के नेताओं के हाथ में आई तो उन्होंने इस प्रथा के उन्मूलन के लिए कानून बनाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1948 में ग्रामीण सुधार समिति की स्थापना की जिसने कृषि सुधार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए। उन सुझावों का निष्कर्ष यही था कि भारतीय कृषि में मध्यस्थों अथवा बिचौलियों की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए तथा भूमि का स्वामित्व किसानों को मिलना चाहिए। इन सुझावों पर गौर करके सरकार ने कानून बनाए जिससे जमींदारों तथा बिचौलियों की समाप्ति हुई। हालांकि देश के कुछ हिस्सों में बिचौलिये अब भी मौजूद हैं, लेकिन उनकी संख्या नगण्य है।

पट्टेदारी में सुधार

हमारे देश में पट्टेदारी में सुधार की आवश्यकता को बहुत समय पूर्व से महसूस किया जा रहा था, लेकिन इस दिशा में कदम सर्व प्रथम सन् 1859 में उठाया गया जब बंगाल सरकार ने बंगाल लगान नियम के अधीन किसानों के लगान को नियमित करके उनके हितों की रक्षा करने का प्रयत्न किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार ने किसानों की क्षोभनीय दशा में सुधार के लिए विशेष प्रयत्न किए। पहली पंचवर्षीय योजना में योजना आयोग ने किसानों की दशा सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए:

(i) लगान को घटाना व उसकी अधिकतम सीमा नियत करना : लगान को हटाना अथवा उसमें कमी करना पट्टेदारी व्यवस्था में सुधार का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस सम्बन्ध में बनाए गए कानून के अन्तर्गत लगान की अधिकतम सीमा नियत की गई। जैसे—पंजाब में कुल उपज का 1/4, राजस्थान में 1/6, उड़ीसा में 1/4, हरियाणा में 1/4 से अधिक लगान नहीं लिया जा सकता। छठी पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है।

(ii) मुजारों को भूमि पट्टे की सुरक्षा प्रदान करना : सामाजिक न्याय तथा कृषि उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से भूमि पट्टों को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। प्रत्येक राज्य में यह व्यवस्था की गई है कि पट्टेदारों को उनकी जोत से तब तक बेदखल न किया जाए जब तक कि वे लगान का भुगतान न करने के दोषी पाए जाएं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारणों से भी किसी किसान को भूमि से बेदखल किया जा सकता है:

(क) यदि किसान भूमि का दुरुपयोग करता हो।

(ख) यदि वह कृषि कार्य करने में अपनी असमर्थता प्रकट करता हो।

(ग) यदि जोत का आकार निर्धारित मान से अधिक हो।

योजना आयोग ने यह सिफारिश की थी कि ठेके पर खेती करने वाले किसानों के लिए ठेके की अवधि 5 से 10 वर्ष तक निश्चित की जाए। इस सिफारिश के अनुसार सभी राज्य सरकारों ने यह अवधि निश्चित की। मिसाल के लिए पंजाब में यह अवधि 5 वर्ष निश्चित की गई।

(iii) मुजारों को भूमि में स्वामित्व का अधिकार देने की सुविधा प्रदान करना :पट्टेदारी में सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमों के अन्तर्गत किसानों को भूमि में स्वामित्व का अधिकार देना भी एक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। सामाजिक न्याय प्रदान करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम रहा है। राज्यों द्वारा इस सम्बन्ध में बनाए गए कानूनों में ऐसी व्यवस्था की गई कि मुजारे अपनी खेती की भूमि को, जिसे भू-स्वामी निजी खेती के लिए भी वापस नहीं ले सकता, वार्षिक लगान से कई गुनी अधिक रकम देकर खरीद सकते हैं और इस प्रकार वे स्वयं भूमि के स्वामी बन सकते हैं। इस प्रकार किसानों का सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार लगभग 30 लाख किसानों और बटाई पर खेती करने वालों को इस व्यवस्था के अन्तर्गत लगभग 70 लाख एकड़ भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हो चुका है।

(iv) स्थायी सुधारों के लिए मुआवजा देना :किसानों के लिए बनाए गए कानूनों में यह व्यवस्था भी की गई कि जब कोई मुजारा भूमि छोड़े अथवा उसे भूमि से अलग किया जाए तो उसके द्वारा भूमि पर भवन, कुएं आदि के निर्माण के बदले भू-स्वामी से मुआवजा मिलेगा।

(v) लगान की छूट प्रदान करना : जब सूखे या बाढ़ आदि के कारण फसल नष्ट हो जाने पर सरकार द्वारा भू-स्वामी को भू-राजस्व की छूट दी जाती है तो भू-स्वामी द्वारा मुजारे को लगान की छूट देने की व्यवस्था की गई।

(vi) बेगार लेने की मनाही करना : मुजारों से अनुचित बेगार या नजराना लेना भी कानून के विरुद्ध घोषित किया गया।

(vii) कुर्की से छूट प्रदान करना : यदि किसी मुजारे ने पूरा लगान न दिया हो तो उसके पशु, औजार, खड़ी फसल तथा उसके रहने के घर की कुर्की नहीं हो सकती।

भूमिजोतों की चकबन्दी

भारत में कृषि जोतें बहुत छोटी-छोटी और विखंडित भी रही हैं। जोतों के विखंडित होने से कृषि की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है और बहुत-सी कृषि भूमि का अपव्यय होता है। इस समस्या का हल चकबन्दी की प्रक्रिया को लागू करके निकाला गया। मिसाल के लिए यदि एक किसान की कुल पांच एकड़ भूमि चार अलग-अलग टुकड़ों में बंटी थी, उसे चकबन्दी करके एक स्थान पर पांच एकड़ भूमि दे दी गई। इससे समय और श्रम का अपव्यय तो रुका ही, सिंचाई की सुविधा भी ठीक ढंग से मिलने लगी। किन्तु इस प्रयत्न में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। तभी यह अनुभव किया गया कि चकबन्दी करने के लिए कानून पास किया जाए। तदनुसार कई राज्यों ने इस बारे में कानून पास किए। इस कानून के अनुसार यदि किसी गांव के आधे किसान जिनके पास गांव की दो तिहाई भूमि हो, चकबन्दी करना चाहें, तो सरकार शेष किसानों को इसके लिए बाध्य कर सकती है।

चकबन्दी के बारे में कानून तो पास हो गया किन्तु उसका पालन करने में कुछ कठिनाइयां सामने आई:

(i) बहुत-से क्षेत्रों में भूमि सम्बन्धी रिकार्ड नहीं मिले।

(ii) पैतृक भूमि से मोह होने के कारण बहुत-से किसानों को लाभ होने के बावजूद भी उसे वे चकबन्दी के लिए देने को राजी नहीं हुए। अशिक्षा और रूढ़िवादिता के कारण वे चकबन्दी की उपयोगिता को नहीं समझ पाए और उसका विरोध करते रहे।

(iii) चकबन्दी जैसे जटिल और तकनीकी कार्य के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है तथा सरकार को व्यय भी काफी ज्यादा करना पड़ता है। प्रशिक्षित कर्मचारियों तथा वित्त की कमी के कारण राज्य सरकारें इस कार्य को तेजी से आगे नहीं बढ़ा सकीं।

खर्च को पूरा करने के लिए उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली आदि राज्य की सरकारों ने भू-स्वामियों से चकबन्दी की फीस लेना आरम्भ कर दिया है। कुछ राज्यों में चकबन्दी सम्बन्धी प्रशिक्षण की सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं। सरकार के कृषि मंत्रालय के अधीन ग्रामीण विकास विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन 1988-89 के अनुसार अब तक 584.72 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी हो गई है। राज्यों को यह सलाह दी गई है कि वे छोटे किसानों के हितों का विशेष ध्यान रखें। चकबन्दी की प्रक्रिया को लागू करने की गुणवत्ता में भी सुधार करने के प्रयत्न किए गए हैं तथा इस सम्बन्ध में होने वाली जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिए केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों के पारस्परिक अनुभव के आदान-प्रदान के लिए भी उनको निकट लाने के प्रयत्न किए हैं।

भूमि जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित करना

हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि जोतों की उच्चतम सीमा नियत करने के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया था और इस दिशा में कानून पास करने के लिए राज्य सरकारों से सिफारिश की गई थी। 1961-62 तक सभी राज्यों में इस आशय के कानून पास किए जा चुके थे। इस कानून के अधीन किसी व्यक्ति को अपने अधिकार में भूमि रखने की उच्चतम सीमा नियत की गई थी जो भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न थी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में कई प्रकार के खेतों को जोतों की उच्चतम सीमा सम्बन्धी कानून से मुक्त रखने की सिफारिश भी की गई थी। इन खेतों को इस कानून में छूट देने का उद्देश्य यह था कि कृषि की कुशलता अथवा उत्पादिता पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। सरकार यह समझती थी कि इन खेतों का आकार छोटा करने से कृषि को हानि होगी। 1971 तक भूमि-जोतों की उच्चतम सीमा की नीति बहुत ही धीमी गति से लागू की गई जिसके परिणामस्वरूप इससे वांछित लाभ प्राप्त न हो सका। उच्चतम सीमा को बहुत ऊंचे स्तर पर नियत किया गया था जिस कारण सरकार को अतिरिक्त भूमि बहुत कम प्राप्त हुई। कई राज्यों—जैसे बिहार, केरल, कर्नाटक, उड़ीसा और राजस्थान में कोई अतिरिक्त भूमि नहीं मिली। शेष सब राज्यों में अतिरिक्त भूमि केवल कुछ हजार एकड़ों में ही थी। केवल पश्चिमी बंगाल में 8 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई। सारे देश में केवल लगभग 24 लाख एकड़ भूमि बांटी गई। जो अतिरिक्त भूमि प्राप्त हुई वह प्रायः घटिया किस्म की थी, क्योंकि बढ़िया भूमि भू-स्वामियों ने अपने पास रख ली थी।

23 जुलाई 1972 को मुख्य मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। उसमें निम्नलिखित सिफारिशें की गईं :

(i) भूमि जोत की उच्चतम सीमा सारे परिवार पर लागू की जानी चाहिए।

(ii) पांच सदस्यों के परिवार के लिए उच्चतम सीमा 10 से 18 एकड़ तक निर्धारित की जानी चाहिए।

(iii) विश्वस्त सिंचाई वाली जिस भूमि में एक वर्ष में केवल एक ही फसल उगाई जा सकती है, उसकी उच्चतम सीमा 27 एकड़ तक हो सकती है।

(iv) अन्य सभी प्रकार की भूमियों के लिए जोत की अधिकतम सीमा 54 एकड़ निर्धारित की जाए।

(v) कुछ परिस्थितियों में छूट देने की सिफारिश भी की गई, जैसे—चीनी के कारखानों को 100 एकड़ तक भूमि अपने पास रखने की छूट तथा चाय, काफी आदि के बागानों को पहले से मिलने वाली छूट आदि।

प्रयत्नों के बावजूद नई जोत सीमाबन्दी देश में पूरी तरह से लागू नहीं हो सकी है। नगालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम जैसे प्रदेशों में जहां भूमि का स्वामित्व शक्तिशाली भूमि स्वामियों तथा समूहों के पास था, यह नीति लागू करने में कठिनाई महसूस हुई। बहुधा इस बात की आलोचना की जाती है कि बड़े और शक्तिशाली भू-स्वामी सीमाबन्दी नियमों का उल्लंघन करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर किए गए विभिन्न सर्वेक्षणों से यह पता लगा कि अनुमानित अतिरिक्त भूमि का क्षेत्र वास्तविक घोषित अतिरिक्त भूमि के क्षेत्र से कहीं अधिक है। दिसम्बर 1988 में होने वाले राज्यों के राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में सर्वसम्मति से पुनर्वितरण के लिए भूमि की उपलब्धि बढ़ाने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाने का निर्णय लिया गया। आवश्यक कदम ये हैं:

(i) वैधानिक कार्यवाहियों को दृढ़ करना।
(ii) छूटों के बारे में पुनर्विचार करना।
(iii) पारिवारिक इकाई को पुनः परिभाषित करना।
(vi) सीमाबन्दी का पुनर्निर्धारण करना।

इनके बारे में राज्यों को सिफारिशें कर दी गई हैं, लेकिन अभी तक वहां से उत्साहजनक प्रत्युत्तर नहीं मिले हैं। जिस भूमि का अधिग्रहण सीमाबन्दी नियमों के अन्तर्गत किया गया है उसके वितरण में भी कमी हुई है। इसके कारण ये हैं:(i) भूमि खंड मुकदमें बाजी में फंसे हुए हैं; (ii) पुनर्वितरण के योग्य नहीं हैं तथा(iii) धार्मिक, शैक्षणिक और दातव्य संस्थाओं के लिए सुरक्षित हैं।

राज्यों को बची हुई अतिरिक्त भूमि के वितरण के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए कहा गया है। जो भूमि मुकदमेबाजी में फंसी हुई है उनके मामलों को भी तेजी से निबटाने के लिए राज्यों को आवश्यक निर्देश दिए गए हैं।

कृषि मंत्रालय के ग्रामीण विकास विभाग की वर्ष 1988-89 की रिपोर्ट के अनुसार ताजा स्थिति इस प्रकार है:

(i)	सीमाबन्दी नियमों के अन्तर्गत अधिग्रहत भूमि	73.48 लाख एकड़
(ii)	वितरित क्षेत्र	44.92 लाख एकड़
(iii)	क्षेत्र जो वितरित होना है	28.56 लाख एकड़
(iv)	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या	41.52 लाख व्यक्ति

(v)	अनुसूचित जातियों के लाभान्वित व्यक्ति	14.63 लाख व्यक्ति
(vi)	अनुसूचित जनजातियों के लाभान्वित व्यक्ति	5.70 लाख व्यक्ति
(vii)	बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 में वितरण का लक्ष्य	2,26,479 एकड़
(viii)	नवम्बर 1988 तक उपलब्धि	53,787 एकड़

सीमाबन्दी नियमों के अन्तर्गत मिलने वाली अतिरिक्त भूमि के बारे में यह देखा गया कि वह गुणवत्ता में घटिया है। इसलिए लाभान्वित व्यक्तियों को भूमि का आवश्यक विकास करने के लिए तथा निवेशों की खरीद के लिए 2500 रु. प्रति हैक्टेयर की दर से आर्थिक सहायता दी गई है जिसमें केन्द्र और राज्यों की बराबर की भागीदारी होगी। केन्द्र सरकार 4.5 करोड़ रुपये की राशि इस उद्देश्य के लिए देगी। यह योजना भू-दान के अंतर्गत प्राप्त तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों द्वारा प्राप्त भूमि के स्वामियों को लाभ पहुंचाएगी। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत आने वाली अतिरिक्त भूमि के प्राप्तकर्ताओं को इस आर्थिक सहायता का लाभ पहुंचेगा।

सहकारी खेती को प्रोत्साहन देना

भारत में भूमि सुधारों का लक्ष्य सहकारी खेती को अपनाना है। हमारी कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अधिकांश समस्याओं का हल सहकारी खेती ही है। महात्मा गांधी ने कहा था : "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम तब तक कृषि से पूरा लाभ नहीं उठा सकते जब तक कि हम सहकारी खेती न करने लगें।"

सहकारी खेती मुख्यतः चार प्रकार की होती है : (i) सहकारी संयुक्त खेती (ii) सहकारी मुजारा खेती (iii) सहकारी सामूहिक खेती तथा (iv) सहकारी उन्नत खेती।

भारत में सर्वप्रथम सहकारी खेती की नीति अपनाने की सिफारिश 1945 में सहकारी योजना समिति ने की। 1949 में कुमाराप्पा समिति ने भी छोटी तथा अनार्थिक जोतों को आर्थिक आकार का बनाने के लिए सहकारी संयुक्त खेती पर जोर दिया। पंचवर्षीय योजनाओं में भी सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने पर जोर दिया गया। सहकारी खेती के महत्व पर जोर दिए जाने के बावजूद भारत में इसकी प्रगति बहुत धीमी रही है और यह लोकप्रिय नहीं बन सकी। इसको लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास होने चाहिए।

भूमि के रिकार्डों को अद्यतन करना

भूमि सुधार के कार्यों में भूमि के रिकार्डों को सही तथा अद्यतन रखना भी एक आवश्यक कार्य है। सरकार ने नए बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि रिकार्डों को अद्यतन करने के लिए राज्यों से कहा है। इस सम्बन्ध में सितम्बर 1988 में पहली बार भूमि व्यवस्था—आयुक्तों, निदेशकों तथा भूमि रिकार्डों और राजस्व सचिवों का एक अभूतपूर्व सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में भूमि रिकार्डों को अद्यतन करने के लिए विभिन्न उपायों पर विचार-विमर्श हुआ तथा महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। मध्य प्रदेश, गुजरात, असम, उड़ीसा, बिहार, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश राज्यों को उनके एक-एक जिले के लिए भूमि-रिकार्डों को कम्प्यूटरों की सहायता से अद्यतन करने के लिए सहायता देने की योजना बनाई गई है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में भूमि-सुधार सम्बन्धी कई कार्यक्रम लागू किए गए लेकिन वे अपेक्षित स्तर तक सुधार लाने में असफल रहे हैं। इस बारे में सिर्फ सरकार को ही दोष नहीं दिया जा सकता। भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमों की असफलता के अनेक कारण रहे हैं जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण रहे हैं:

(i) रूढ़िवादिता तथा हठधर्मी के कारण अनेक कृषकों ने भूमि-सुधार कार्यक्रम नहीं अपनाए।

(ii) जमींदारी प्रथा तथा मध्यस्थों का उन्मूलन करने का कार्य बड़े उत्साह के साथ प्रारम्भ किया गया लेकिन स्वयं खेती करने के नाम पर तत्कालीन जमींदारों ने अनेक स्थानों पर किसानों को बेदखल करके भूमि को अपने कब्जे में कर लिया।

(iii) भूमि सम्बन्धी रिकार्ड सही तथा अद्यतन नहीं थे।

इसके बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि देश में भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम सही दिशा में चल रहे हैं। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में शोषण को समाप्त करने तथा असमानता को दूर करने में सफल रहे हैं। सरकार को इस बारे में जन-सहयोग मिलने से कार्यक्रम अधिक तेजी से लागू हो सकेंगे। वर्ष 1988 सितम्बर में हुए राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में उन सभी कठिनाइयों पर विचार किया गया जो भूमि सुधार के मार्ग में आती हैं। सर्वसम्मति से राष्ट्रीय स्तर का एक आयोग स्थापित करने का निर्णय भी लिया गया जो राजस्व प्रबन्ध तथा भूमि-रिकार्ड पद्धति का पुनर्मूल्यांकन करेगा। आशा है इस आयोग की स्थापना के बाद अपेक्षित जन-सहयोग मिलने पर भूमि सुधार कार्यक्रम सफलतापूर्वक लागू किए जा सकेंगे और कृषकों को पूर्ण सामाजिक न्याय मिलेगा।

के-84 ए, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार की प्रगति

रजनी शर्मा
डा. मन्सूर अली

उत्तर प्रदेश एक कृषि प्रधान राज्य है। 1981 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या 11,08,62,013 आंकी गयी। 1981 की जनगणना के अनुसार ही 74.5 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। 1981 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में 1 हैक्टेयर से कम भूमि जोत का प्रतिशत 70.56, 1 हैक्टेयर से 2 हैक्टेयर भूमि जोत संख्या का प्रतिशत 16.27, 2 हैक्टेयर से 3 हैक्टेयर भूमि जोत संख्या का प्रतिशत 6.16 तथा 3 हैक्टेयर से अधिक भूमि जोत संख्या का प्रतिशत 7.07 आंका गया। स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में आय का स्रोत प्रमुखतया कृषि है किन्तु जोतें अत्यन्त छोटी होने के साथ-साथ भूमि का वितरण भी असमान है। उत्तर प्रदेश की लगभग 65 प्रतिशत कृषि अर्थव्यवस्था आय एवं उत्पादन की दृष्टि से पिछड़ी हुई है। इस पिछड़ेपन का मुख्य कारण राज्य में पर्याप्त भूमि सुधारों का अभाव रहा है। पर्याप्त एवं प्रभावी भूमि सुधारों के अभाव में राज्य में कृषि गत ढांचे तथा संगठन में आवश्यक परिवर्तन लाने तथा सामाजिक न्याय एवं आर्थिक समानता लाने में काफी विलम्ब हुआ है। इसी सन्दर्भ के प्रस्तुत लेख में उ. प्र. में भूमि सुधार प्रमुखतया अधिकतम जोत सीमा अधिनियम की प्रगति के मार्ग में आने वाली प्रमुख कठिनाइयां, कमियां एवं सुझावों का उल्लेख है।

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व उत्तर प्रदेश में जमींदार व जागीरदार तथा बिचौलियों के कारण काश्तकारों की दशा शोचनीय थी, किन्तु 1951 में उ. प्र. सरकार द्वारा जमींदारी उन्मूलन अधिनियम पारित किया जिससे सरकार एवं काश्तकारों का सीधा सम्पर्क स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त कृषि लगान का नियमन, बेदखली से सुरक्षा तथा खातेदारी हक दिलाना आदि समस्याओं को सुलझाने हेतु काश्तकारी सुधार किये गये। भूमि सुधार का मुख्य उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और सामाजिक न्याय है।

किसी भी देश अथवा भूमि प्रदेश में समान वितरण अत्यन्त आवश्यक है, चाहे वह आय का हो अथवा भूमि का। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने 1961 में भूमि अधिनियम पारित किया। इसके अन्तर्गत दो तथ्यों को महत्व दिया गया। 1. जोतों की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण करना 2. अतिरिक्त भूमियों वाले भू-स्वामियों से भूमि लेकर भूमिहीन मजदूरों में वितरित करना। भूमि जोत सीमा अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भूमि के असमान वितरण को कम करना, जिससे सामाजिक न्याय बना रहे।

वर्ष 1980-81 से 1986-87 तक अधिकतम जोत सीमा-आरोपण अधिनियम के अन्तर्गत शुद्ध उपलब्धि

	मद	1980-81	81-82	82-83	83-84	84-85	85-86	86-87
1	अतिरिक्त घोषित भूमि (हे.)	277	2257	4736	8673	3616	1824	5975
2	कब्जे में ली गई भूमि (हे.)	5427	3099	2394	8435	4556	3598	4400
3	कुल बन्दोबस्त की गयी भूमि का क्षेत्र	9069	4093	1841	6497	5005	3635	4508
4.	अनु. जाति स./क्षे.	4901	2746	4219	3062	3365	2222	3340
		4059	2020	2329	1645	3685	1628	2177
5	जनजाति स./क्षे.	— अनुसूचित जाति के आकड़ों मे सम्मिलित है						
6.	अन्य जाति स./क्षे.	1437	1206	837	3570	1787	2376	2333
		1106	670	1127	3304	1352	1436	1966
7	कुल आवंटियों की स./क्षे.	6338	4032	5186	6632	5258	4598	5677
		5165	2710	3456	4949	5112	3864	4146
8	वन में निहित व अन्य विभागों को हस्तान्तरित भूमि का क्षेत्रफल	3983	1383	(-)1615	1543	(-)3109	571	362

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जो भूमि वितरित की गई है वह कृषि करने के लिये पर्याप्त नहीं है। यदि औसत निकाला जाये तो एकड़ से भी कम है। जोतें अनार्थिक होने के साथ-साथ वितरित भूमि बंजर, अनुपजाऊ व असिंचित हैं।

उत्पादकता को बढ़ाने के लिये सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। छोटी व बिखरी हुई जोतों की समस्या को सुलझाने हेतु सरकार ने चकबन्दी शुरू की। चकबन्दी का अभिप्राय बिखरी व छोटी जोतों को संगठित करना है अर्थात्

उन्हें एक चक में बांधना है, जिससे अनार्थिक जोत की समस्या को सुलझाया जा सके।

उत्तर प्रदेश में चकबन्दी अधिनियम, 1954 में पारित किया गया। इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य जोतों को आर्थिक जोत के रूप में परिवर्तित करके उत्पादकता को बढ़ाना था।

चकबन्दी का कार्य पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश में लगभग पूरा हो चुका है। छठी पंचवर्षीय योजना तक 53 मिलियन हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी हो चुकी है। सातवीं योजना में यह लक्ष्य रखा गया है कि देश के लगभग चौथाई भाग पर चकबन्दी का कार्य पूरा हो जायेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सरकार ने भूमि सुधार से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जैसे जमींदारी उन्मूलन, काश्तकारी सुधार, अधिकतम जोत सीमा अधिनियम, चकबन्दी। किन्तु इनका कार्यान्वयन सुचारू रूप से नहीं हुआ। यदि यह कहा जाये कि कुछ कमियों के कारण भूमि सुधार से कृषक कम लाभान्वित हुए हैं तो अनुचित न होगा, प्रमुख कमियां निम्नलिखित हैं–

(1) भाषा की दुरुहता के कारण भूमि सुधार कानूनों का सामान्य कृषक की समझ से परे होना।

(2) भूमि प्रबन्ध से सम्बन्धित प्रशासनिक ढांचे में व्याप्त भ्रष्टाचार।

(3) भूमिहीनों की आबंटित भूमि का कब्जा न मिल पाना।

(4) जो भूमि भूमिहीनों में वितरित की गई है वह कृषि के लिए काफी न होने के साथ-साथ बंजर व अनुपजाऊ है।

(5) भूमि व भूस्वामियों से सम्बन्धित रिकार्ड का उपलब्ध न होना।

(6) भूमि सुधार के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट कृषकों का अशिक्षित होना है, वे अपनी भूमि से मोह के कारण चकबन्दी से बचना चाहते हैं।

चकबन्दी के कार्य में प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव रहा है।

उपर्युक्त कमियों व कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:–

1. जो भूमि भूमिहीनों में वितरित की गई है वह मात्रा में कम होने के साथ-साथ अनुपजाऊ एवं बंजर है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार को भूमि पर पहले तकनीकी उपायों द्वारा भूमि को उपजाऊ बनाकर ही वितरित की जाए।

2. भूमि वितरण सम्बन्धी भ्रष्टाचार के कारण अनेक समस्याएं हैं। अतः भ्रष्टाचार पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है।

3. भूमिहीनों को भूमि के साथ कुछ नगद भुगतान दिया जाता है। मेरी राय में यह उचित नहीं है क्योंकि यह देखने में आया है कि यह वर्ग आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उस धनराशि को बुरे व्यसन में खर्च कर देता है। इसलिए भूमि के साथ-साथ उन्हें कृषि, कृषि औजार (हल, बैल), बीज, पानी, उर्वरक, खाद आदि की सुविधा होनी चाहिए।

4. जिन कृषकों की भूमि अतिरिक्त घोषित हुई है उनसे अधिकांश कृषिकों को अभी तक मुआवजा नहीं मिला है। अतः मुआवजा दिया जाए।

5. जो एजेंसियां छोटे व सीमान्त कृषकों को ऋण देती हैं उससे ऐसा प्रावधान किया जाना चाहिये कि उन किसानों को जो ऋण दिया जाये वह सस्ती ब्याज की दर व मुलायम शर्तों पर दिया जाये तथा इस बात पर भी ध्यान दिया जाये कि इस ऋण का प्रयोग केवल उत्पादक कार्य के लिये ही किया जाये।

छोटे व सीमान्त किसान की समस्या का समाधान केवल उतने से नहीं होता उसको उत्पादन में भी सहायता चाहिए। नई तकनीकी का सहयोग चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उसको नया ज्ञान सुचारु रूप से दिया जाना चाहिए। उत्पादित वस्तु का सही तरीके से विपणन की सुविधा होनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो भण्डारण की सुविधा भी होनी चाहिए।

भूमिहीनों को जो भूमि वितरित की गई है उसकी जोत छोटी एवं अनार्थिक है। इस समस्या के समाधान के लिये यह सुझाव दिया जा सकता है कि कुछ छोटे व सीमान्त कृषकों को इकट्ठा करके एक जगह दी जाये। उस पर सामूहिक तरीके से खेती कराई जाये तो कृषक का अधिक लाभ होगा। हमारे विचार में यह एक महत्वपूर्ण सुझाव है इसके कारण ही छोटे व सीमान्त कृषक नई तकनीक को अपना सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भूमि सुधार कार्यक्रम ही कृषि की नींव है। जब तक भूमि सुधार कार्यक्रम की कुछ कमियों में सुधार नहीं किया जायेगा इसको सुचारू रूप से लागू नहीं किया सकता। इसके अतिरिक्त न तो हम कृषि उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं और न ही सामाजिक न्याय को प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये सरकार व कृषक दोनों का सहयोग आवश्यक है। केवल सरकार द्वारा किये गये प्रयास किसी भी अधिनियम के कार्यान्वयन के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

मानविकी विभाग
रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की

भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करना आवश्यक

नवीन चंद्र जोशी

भूमि सुधारों की विचारधारा में ऐसे समेकित कार्यक्रम शामिल हैं जिनका तात्पर्य कृषि ढांचे में खामियों के कारण होने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास की बाधाओं को दूर करना है। ऐसी स्थिति में स्वामित्व के संगठन या भूमिधारी में अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए नीतिगत प्रयासों में काश्तकारी में सुधार लाने, ऋण की उपलब्धता के पुनर्गठन, उपयुक्त दरों पर विभिन्न कृषि निवेशों को उपलब्ध कराना तथा बिना किसी शोषण और न्यूनतम असुविधा के विपणन की सुविधाएं उपलब्ध कराना है। निश्चय ही हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े-बड़े जमीन-जायदाद को टुकड़ों-टुकड़ों में करने और/अथवा भूमिहीन मजदूरों को उनके पुनर्वितरण से कोई सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता जब तक कि विभिन्न उपायों के जरिए उनकी आर्थिक सक्षमता में सुधार लाने के प्रयास नहीं किए जाते क्योंकि आर्थिक सक्षमता में सुधार लाए बिना कृषि व्यवसाय करना मुश्किल हो जाएगा।

उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश में, जहां जमीन के दस्तावेज और प्रशासनिक व्यवस्था पहले से ही विद्यमान है, यह काम अपेक्षाकृत अधिक आसान है। लेकिन उड़ीसा, प. बंगाल और बिहार जैसे राज्यों में तो यह सारा काम बिल्कुल नए सिरे से करना होगा। हालांकि सरकारी वक्तव्य के अनुसार देश के कुछ क्षेत्रों के छोटे-छोटे इलाकों को छोड़कर पहली योजना के अंत तक बिचौलियों को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया था। अनुमान है कि 17.30 करोड़ जमीन का बिचौलियों से अधिग्रहण किया गया और लगभग 2 करोड़ काश्तकारों का सरकार से सीधा सम्पर्क कायम कर लिया गया।

बाधाएं

विभिन्न राज्यों द्वारा इससे संबंधित कानूनों पर अमल करने से उत्पन्न अनेक कठिनाइयों पर राज्य सरकारों को नियंत्रण करना था। जमींदार अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों को सौंप देना नहीं चाहते थे और वे कानून की खामियों का पूरा फायदा उठाते हुए किसी न किसी बहाने से अदालतों का सहारा लेने लगे। जमींदारों और राज्य सरकारों के बीच कानूनी लड़ाई में अनावश्यक रूप से काफी लम्बा समय लगा। जब जमींदार अन्ततः यह लड़ाई हार गए तो उन्होंने जमीन के कागजात और अन्य सम्बद्ध कागजात सौंपने से इन्कार करके देरी करने के अन्य तरह-तरह के तरीके अपनाने लगे।

परिणाम यह हुआ कि भूमि जोतों पर सीलिंग लागू करने का काम भूमिधारी सुधार बिचौलियों को समाप्त करने या काश्त सुधार के अन्य उपायों पर अमल करने की तुलना में ज्यादा दुष्कर बना रहा। आज भी केवल 22.3 प्रतिशत क्षेत्र की खेती का काम करा रहे हैं। दूसरी ओर 74.5 प्रतिशत किसानों के पास केवल 26.3 प्रतिशत क्षेत्र है। भारत में इस समय भूमि के जोतों पर इस तथ्य से इस समस्या को अधिक बारीकी से समझा जा सकता है। जमीन के जोतों का 74.5 प्रतिशत दो हैक्टेयर से कम जोत वाला है जबकि कुल क्षेत्र का इसमें 1.3 प्रतिशत के बराबर है; भूमि नियमन कानूनों के बावजूद कुछ ही हाथों में जमीन का केन्द्रीकरण हुआ है।

भाड़े के मजदूर

खेती के कामों में जो कुल श्रमिक काम करते हैं उनका अनुपात बढ़ता जा रहा है और इसमें भाड़े पर काम करने वाले श्रमिकों की संख्या में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है जिसके फलस्वरूप कृषि संबंधी कार्यों में पूंजी पर आधारित संबंध और तेज होते जा रहे हैं। काश्तकारी कानूनों के अन्तर्गत छोटे-छोटे जमीन मालिकों के साथ भी अन्याय हुआ है। काश्तकारी की बिचौलियों की प्रथा अभी पूरी तरह समाप्त की जानी है। जहां बिचौलिए काश्तकारों को समाप्त कर दिया गया है वहां और भी स्थिति खराब हुई है। प्रच्छन्न काश्तकारी की प्रथा सामने आई है जिसमें काश्तकारों को न तो कोई अधिकार है और न ही कोई सुरक्षा। ऐसे काश्तकारों का पता लगाने और रजिस्टरों में उनके नाम दर्ज करने के राज्य सरकारों के प्रयास उसी तरह

खराब स्थिति में रहे हैं जिस प्रकार भूमि सीमा नियमन कानूनों पर अमल की स्थिति रही है। 74.54 लाख एकड़ जमीन फालतू घोषित की गई थी और यह अनुमानों से बहुत कम है और इसमें से भी केवल 77 प्रतिशत अर्थात् 57.88 लाख हैक्टेयर जमीन को कब्जे में लिया जा सका। वास्तव में केवल 45.36 लाख एकड़ जमीन का वितरण किया गया जो फालतू घोषित जमीन का 58.2 प्रतिशत है।

बेदखली का तरीका

कानूनों में सबसे बड़ा दोष यह था कि व्यक्तिगत जुताई के लिए जमीन प्राप्त करने के संबंध में अनुभवी जमींदार इस उद्देश्य के लिए काश्तकारों को बेदखल भी कर सकते थे।

'व्यक्तिगत जुताई' सही ढंग से पारिभाषित नहीं थी ताकि उसमें जमींदार या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा व्यक्गित निरीक्षण को शामिल किया जा सके। सरकारी कागज-पत्रों में हालांकि बताया गया है कि जमींदारी का पूरी तरह उन्मूलन कर दिया गया है परन्तु तथ्य यह है कि सिर्फ इसका रूप बदल गया है। पहले के जमींदार भाड़े के खेतिहर मजदूरों की सहायता से खेती संबंधी कामकाज के लिए व्यक्तिगत जुताई के लिए बड़े क्षेत्रों को कब्जे में ले लेते थे। फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि काश्तकारों और जमीन के वास्तविक जोतने वाले लोगों के दमन और शोषण में तेजी से कमी आई है और सामंतवादी ढांचा चरमरा कर ढह गया है।

यह सही है कि देश के अधिकांश हिस्से में जमींदारों और जागीरदारों जैसे बिचौलियों को समाप्त करने से लगभग 2 करोड़ काश्तकार राज्य सरकारों के सीधे संपर्क में आए। परन्तु आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु, प. बंगाल, उड़ीसा और असम में काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार आंशिक या पूर्ण रूप से अभी दिया जाना बाकी है। कुछ राज्यों में खुद जोतने के लिए उन्हें अनुमति नहीं दी गई है। विधवाओं और नाबालिगों को पर्याप्त संरक्षण नहीं दिए गए हैं। नगालैंड में अभी किसी को यह पता नहीं है कि उसके पास कितनी जमीन है। वहां किसी प्रकार का भू-राजस्व का कोई कागज-पत्र नहीं है और जमीन की बिक्री और खरीद समुदाय के हस्तक्षेप के बिना होती है। जमीन आमतौर पर किसी अन्य जनजाति को नहीं बेची जाती है और वहां किसी प्रकार की काश्तकारी की प्रथा नहीं है। जमीन के विवाद जनजातीय परिषद् द्वारा हल किए जाते हैं।

काश्तकारों की सुरक्षा

हालांकि काश्तकारी की सुरक्षा के लिए अधिकतर राज्यों के कानूनों में प्रावधान है परन्तु अब भी काश्तकारों, उप-काश्तकारों और बटाईदारों को स्वामित्व के अधिकार नहीं दिए हैं। कानूनों का उल्लंघन करना या उन पर अमल न करना अपवाद की जगह नियम जैसा बन गया है। राष्ट्रीय नीति में निर्धारित काश्तकारी की सुरक्षा बुनियादी तत्वों में शामिल हैं। कुल उपज के पांचवें या चौथाई हिस्से के बराबर की दर से काश्तकार द्वारा लगान दिया जाना और लगान न देने सहित कुछ निर्धारित आधारों को छोड़कर जमीन से बेदखल करने का निषेध किया गया। इन बातों को ध्यान में रखते हुए सभी राज्यों में कानून बनाए गए हैं परन्तु व्यावहारिक रूप से देखा गया है कि जहां किसान संगठन कमजोर हैं जमींदार वहां किसानों को उनके उचित हिस्से से वंचित रख रहे हैं।

जमीन के दस्तावेजों के संबंध में स्थिति काफी हद तक निराशाजनक है। बिहार में ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन की समस्या बहुत खतरनाक स्थिति में पहुंच चुकी है। वहां जमींदारों और भूमिहीन लोगों, जिनमें हरिजन शामिल हैं, के बीच प्रायः टकराव का वातावरण जारी रहता है। बटाईदारों के नाम दर्ज करने के संबंध में कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं। यही स्थिति उड़ीसा व मध्य प्रदेश में भी है, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश की स्थिति भी इससे बेहतर नहीं है।

स्वामित्व अधिकार

आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु और प. बंगाल (बटाईदारों के लिए) में काश्तकारों और बटाईदारों के लिए स्वामित्व के अधिकार नहीं दिए गए हैं जबकि प. बंगाल में 'आपरेशन बर्ग' के अन्तर्गत 13 लाख बर्गदारों (बटाईदारों) के नाम दस्तावेजों में दर्ज कराए गए लेकिन बिहार या तमिलनाडु में इस प्रकार के प्रयास नहीं किए गए और इन राज्यों में काश्तकारों के नाम रिकार्ड में नहीं हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि काश्तकारों और बटाईदारों के नामों को दर्ज किए बगैर उनके काश्तकारी के अधिकारों को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता और ऐसे लोगों को ऋण देने वाली संस्थाओं से फसल के लिए ऋण भी नहीं मिल सकते।

अब तक के अनुभवों से पता चला है कि जमीन के सुधारों को पर्याप्त रूप से लागू नहीं किया गया। उसके पीछे दो प्रमुख बातें थीं या तो कानून में खामियां थीं या मामले दर्ज कराकर उनके अमल को रोक दिया गया। जोतों की सीमा के मामले में मुकदमों के कारण राज्य सरकार फालतू घोषित सारी जमीन का अधिग्रहण नहीं कर सकीं। इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिए अगस्त 1984 में संसद में संविधान (48वां) संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार संविधान की नवीं अनुसूची में चौदह और भूमि सुधार कानून

शामिल किए गए। इसमें इन उपायों के खिलाफ किसी कानूनी अदालत में चुनौती देने की व्यवस्था को रोक दिया गया है।

फालतू भूमि का अधिग्रहण

सीमा लागू करने के बाद मिली फालतू जमीन के वितरण का काम एक प्रमुख कार्यक्रम है। केन्द्र सरकार द्वारा भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रमों पर अमल करने का यह सबसे प्रमुख कार्यक्रम है क्योंकि भूमि सुधार उन सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए बुनियादी कार्यक्रम है जो गांवों के गरीब लोगों की हालत में सुधार करने के लिए चलाए जाते हैं। अधिकांश फालतू जमीन, जिसके बारे में कोई विवाद नहीं था, वितरित कर दी गई है परन्तु सीलिंग के बाद प्राप्त फालतू जमीन का काफी हिस्सा अभी मुकदमेबाजी के कारण वितरित नहीं किया जा सका। राज्यों को सलाह दी गई है कि वे इसके लिए विशेष कदम उठाएं। इनमें उच्च न्यायालयों में विचाराधीन मामलों को जल्दी निपटाने के लिए ट्राइब्यूनल कायम करना और सीलिंग के बाद मिली अतिरिक्त जमीन को बांटने का काम तेज करना। इस प्रकार की जमीन के वितरण के लिए समयबद्ध कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए और विवादग्रस्त मामलों को तेजी से निपटाने के लिए न्यायाधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए।

कुछ समय पहले भूमि सुधारों से संबंधित एक सरकारी कार्यदल ने छोटे किसानों को जमीन का निष्पक्ष वितरण करने और काश्तकारी की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए व्यापक सिफारिशें की थीं। ग्रुप ने जो अन्य प्रमुख सिफारिशें की थीं उनमें उच्च न्यायालयों की विशेष पीठों की स्थापना, सीलिंग से संबंधित बकाया मामलों को निपटाने में वर्तमान पीठों की स्थापना करना, जिन लोगों को फालतू जमीन बांटी गई है उनकी सुरक्षा के लिए कड़े कानूनों के प्रावधान और उपयुक्त सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए फालतू भूमि का तत्काल उपयोग शामिल था।

भूमि विवाद

भूमि सुधारों से संबंधित सरकारी कार्यदल ने बताया है कि अनेक उपायों के बावजूद मुकदमों के कारण जमीन के सीलिंग कानूनों के अमल पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा। पिछले एक दशक से मुकदमों के कारण लगभग 16 लाख एकड़ अतिरिक्त जमीन का वितरण नहीं किया जा सका। संविधान की नवीं अनुसूची में भूमि कानूनों को शामिल करने से सभी मुकदमों का इलाज नहीं हो सका। नवीं अनुसूची में एक ऐसा कानून शामिल किया गया था जिसके अनुसार मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर ही किसी कानून को चुनौती नहीं दी जा सकती। केशवानन्द भारती के मामले के बाद नवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को भी चुनौती से मुक्त नहीं रखा जा सका।

अनेक कानूनी उपायों और सुरक्षाओं के बावजूद देश में सभी भूमि सुधारों पर अमल मंथर और अधूरे मन से होता रहा। देश के स्वतंत्र होने के 42 वर्षों के बाद भी भूमि संसाधनों के अच्छे प्रबंध के लिए हमारे पास उचित नीति नहीं है। नीति नियामकों की उपेक्षा, अज्ञानता और संतुष्ट बने रहने की भावना इस मामले में सबसे प्रमुख उदाहरण है। सही और आधुनिक दस्तावेजों के अभाव में काश्तकारी की सुरक्षा से संबंधित कानूनों पर सही ढंग से अमल नहीं हो सका। जमीन के दस्तावेज में यदि किसी व्यक्ति का नाम शामिल नहीं है तो वह यह दावा नहीं कर सकता कि वह एक काश्तकार है। विभिन्न राज्यों में भूमिधारी के बारे में स्वामित्व अधिकार प्रदान करने वाले कानूनों के फलस्वरूप लगभग 40 लाख काश्तकारों को 90 लाख एकड़ भूमि से जमीन पर स्वामित्व का अधिकार मिल गया है। अनेक काश्तकार खरीद मूल्य नहीं अदा कर पाए जबकि कई जमीन खरीदने के लिए हिचकिचा रहे थे क्योंकि जमींदारों ने उनके ऊपर इस बात के लिए जोर डाला कि वे यह लिख कर दे दें कि उनकी इनमें कोई दिलचस्पी नहीं है।

जमीन के दस्तावेज

काश्तकारों और बटाईदारों के नाम कागज-पत्रों में दर्ज किए बगैर उनकी भूमिधारी के अधिकारों की सुरक्षा नहीं की जा सकती और ऐसे व्यक्तियों को फसल के लिए ऋण भी नहीं मिल सकते। पूर्वी क्षेत्र में चावल के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न होने का एक कारण यह भी है कि बिहार और उड़ीसा में बटाईदारी की प्रथा है और इसकी वजह से उन्हें पर्याप्त निवेश और ऋण नहीं मिल पाता है और इससे जमीन का पर्याप्त विकास व भूमिगत जल का उपयोग नहीं हो पाता है।

जिन राज्यों में जमींदारी की प्रथा का उन्मूलन हो गया है वहां भी व्यक्तिगत खेती के नाम पर औपचारिक तथा अनौपचारिक परन्तु गुप्त रूप से यह प्रथा चली आ रही है। इन व्यक्तियों के नाम दस्तावेज में दर्ज न होने पर भी उनका अधिकार बना हुआ है। भूमि सुधारों का एक प्रमुख उद्देश्य ऐसे जमींदारों को खत्म करना है जो वास्तव में उस स्थान में रहकर जमीन पर खेती नहीं करते। जो व्यक्ति वास्तव में जमीन को जोतता है उसी व्यक्ति को उस धरती का मालिक बनाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत कुछ विकलांग वर्गों के लिए काश्तकारी की विशेष व्यवस्था की अनुमति दी गई है लेकिन अनेक राज्यों में विशेषकर उड़ीसा में पर्याप्त छूट दी गई है।

कृषि सुधारों से ग्रामीण गरीबों को हालांकि कुछ हद तक लाभ पहुंचा है लेकिन गांवों की सम्पत्ति-ढांचे में इनमे अभी कोई पर्याप्त परिवर्तन नहीं आया है। इसका एक कारण यह है कि कुछ राजनीतिज्ञ भी बड़े जमींदार है या जमींदारों पर निर्भर हैं। अफसरशाही, पुलिस व जमींदारों के बीच एक प्रकार की सांठ-गांठ भी है। जमीन के दस्तावेजों में प्रायः यह स्पष्ट रूप से नहीं लिखा रहता है कि उसका कौन-सा हिस्सा किसानों को आबंटित किया गया है।

काश्तकारों का संगठन आवश्यक

भूमिहीन लोग संगठित नहीं हैं। छोटे-छोटे किसान भी भूमिहीनों के साथ संगठित होने के स्थान पर बड़े किसानों के साथ हो जाते हैं। यही वजह है कि हरित क्रांति का लाभ ग्रामीण समाज के निचले स्तर तक नहीं पहुंच पाया। इसी प्रकार विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत जो सरकारी सहायता दी जाती है वह लक्ष्य ग्रुपों तक नहीं पहुंच पाती है। भूमि संबंधी सुधार भी ऐसी योजनाओं के साथ समेकित नहीं है कि भूमिहीन किसानों, छोटे किसानों और सीमांत किसानों तक उनका लाभ पहुंच सके। छोटे और सीमांत किसान और अधिक फसल उपजाएं इसके लिए स्वामित्व और उत्पादन के साथ सह-संबंध कायम किया जाना चाहिए। जोतों की चकबंदी किए बिना पानी की सप्लाई की सुव्यवस्था कठिन काम है। अधिकतर राज्यों में जोतों की चकबंदी को स्वैच्छिक या अनिवार्य तौर पर लागू कर दिया गया है। पंजाब, हरियाणा और प. उत्तर प्रदेश में यह काम पूरा हो चुका है। भविष्य में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े न होने पाएं इसके लिए आवश्यक कानून बनाए जाने चाहिए।

जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े होने से रोकना

आर्थिक स्थिति ठीक बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि जमीन के जोतों के छोटे-छोटे टुकड़े होने की वर्तमान प्रक्रिया को रोका जाए। संयुक्त परिवारों के टूटने के कारण हर परिवार के जोत के आकार में कमी आती जा रही है। साथ ही आर्थिक परिस्थितियों के कारण छोटे-छोटे किसान बाध्य होकर अपनी जमीन को बेचने लगे हैं। ऐसी परिस्थितियों में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े होने से रोकना बहुत कठिन काम है। कानूनी अनिवार्यता के बावजूद इस प्रक्रिया में मोड़ लाना बहुत कठिन कार्य है।

भूमि के जोतों की चकबंदी से स्वामित्व की प्रणाली में गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए। अनेक अध्ययनों से पता चला है कि देश के कुछ हिस्सों में यह प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी है कि छोटे किसान दूसरी जगह रोजगार पाने के उद्देश्य से अपनी जमीन को पट्टे पर दे देते हैं। कुछ राज्यों में यदि कोई छोटा किसान अपनी जमीन को पट्टे पर दे देता है तो अनुपस्थित भूमिधारक होने के कारण वह अपनी जमीन से हाथ धो सकता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि भूमि संबंधी जो भी कानून बनाए जाएं उसमें इन सब बातों को ध्यान में रखा जाए।

हमारे देश में भूमि सुधारों में ग्रामीण समुदाय के सभी वर्गों के बीच उपलब्ध भूमि साधनों का समान वितरण करने के साथ-साथ जोतों की चकबंदी, भूमि की सतह को बराबर करने तथा सामाजिक स्वास्थ्य संरक्षण जैसे उपायों को भी लागू किया जाना चाहिए। भूमि स्वामित्व और भूमि उत्पादकता—दोनों को भूमि सुधार उपायों का अभिन्न हिस्सा बनाया जाना चाहिए। जब तक इस योजना को अनिवार्य नहीं बनाया जाएगा तब तक चकबंदी का लाभ सही ढंग से नहीं पहुंच पाएगा। छठी योजना तक 525.60 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबंदी की जा चुकी थी। यह कुल कृषि भूमि का लगभग 34 प्रतिशत है।

सत्ता राजनीति का परिवर्तन

ऐसा लगता है कि सामंतवादी व्यवस्था समाप्त किए जाने के बाद सामंतवादी तत्व और मजबूत होकर उभरे। इस समय का समृद्ध वर्ग ऐसा कोई कदम लागू होने देना नहीं चाहता जिससे उसकी आर्थिक व राजनीतिक शक्ति में कमी आए। सत्ता का ढांचा जमीन के बड़े स्वामियों के पक्ष में है। उन्होंने राज्यों की विधानसभाओं और संसद में अपने निहित स्वार्थों के लिए पक्षधरों की लाबी बना रखा है।

सबसे प्रमुख बात यह है कि भूमि सुधारों का संबंध केवल जमीन से ही नहीं है बल्कि सत्ता के उपयोग तथा दुरुपयोग व सामाजिक ढांचे से भी है। पुराने सामंतवादी तथा अर्द्ध सामंतवादी ढांचे को तोड़कर तथा काश्तकारों व बटाईदारों को सुरक्षा उपलब्ध कराना तथा भूमिहीन गरीब लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को उठाना भी प्रमुख उद्देश्य है।

आठवीं योजना का प्रारूप

आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पत्र में कहा गया है कि भूमि सुधारों को नए सिरे से लागू करना गरीबी को दूर करने और कृषि में उत्पादकता बढ़ाने का एक सक्षम माध्यम है। विशेषकर सिंचित क्षेत्रों में उत्पादकता और भूमि की सक्षमता में सुधार लाने के लिए जमीन के जोतों की चकबंदी के प्रयास को जारी रखना चाहिए।

प्रारूप में बताया गया है कि अनौपचारिक और मौखिक रूप से बनाए गए काश्तकारों के नाम दस्तावेज में दर्ज किए जाने चाहिए और उन्हें काश्तकारी की सुरक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। योजना आयोग चाहता है कि काश्तकारों और

बटाईदारों के अधिकारों की रक्षा के लिए आठवीं योजना अवधि में विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए जमीन के कागज-पत्रों को सही व आधुनिक बनाना आवश्यक है परन्तु इस कार्य की उपेक्षा की जाती रही है और परम्परागत रूप से इसे निम्न प्राथमिकता वाली गैर-योजना कार्यकलाप माना जाता रहा है।

यह भी बताया गया है कि आठवीं योजना अवधि में राजस्व तंत्र को मजबूत बनाने तथा जमीन संबंधी दस्तावेज में हाल तक के आंकड़ों को दर्ज करने के लिए एक बड़ी योजना शुरू की जाएगी। इस काम को तेजी से पूरा करने और आंकड़ों को तैयार करने में लागत में कमी लाने के लिए विज्ञान व टेक्नोलाजी के निवेशों का उपयोग किया जाएगा और ऐसी सूचनाओं को हर व्यक्ति को उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाएगी।

प्रोफेसर सी. एच. हनुमन्तराव ने इस संबंध में एक टिप्पणी में कहा है कि गरीबी को समाप्त करने के विशेष कार्यक्रमों के मामूली असर के लिए हमारा अनम्य और असमान सामाजिक ढांचा काफी हद तक जिम्मेदार है। उन्होंने कहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सत्ता का संतुलन गरीबों के पक्ष में होना चाहिए और इसमें स्वयंसेवी संगठनों को ज्यादा से ज्यादा शामिल किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहा है कि सामाजिक वानिकी कार्यक्रम सबसे गरीब लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने और आमदनी मुहैया कराने के लिए शुरू किया गया था लेकिन इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। अनेक लोगों को विस्थापित कर दिया गया और इसका अनुचित लाभ बड़े किसानों ने शुरू कर दिया और ऐसा ग्राम स्तरों के सामाजिक ढांचे के कारण हुआ।

भूमि सुधारों के सामाजिक-राजनीतिक पहलुओं के अलावा उनके पीछे आर्थिक तर्क यह है कि जमीन के जोतने वाले को ही जब धरती का मालिक बनाया जाएगा तभी उसके मन में यह धारणा बलवती होगी कि वह भूमि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करे और अपनी उपज को अधिकतम सीमा तक बढ़ाए। जब काश्तकारों को इस तरह से प्रेरित किया जाएगा तभी कुल कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी, ग्रामीण आय बढ़ेगी, बचत को प्रोत्साहन मिलेगा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अपेक्षाकृत अधिक निवेश होगा। ऐसा देश जो अपनी राष्ट्रीय आय के लिए कृषि क्षेत्र पर बहुत अधिक अंशों में निर्भर रहता है, अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रगति के लिए उसे कृषि क्षेत्र में पर्याप्त सुधार अवश्य करना चाहिए और अंत में इस प्रकार के उपाय से सभी जातियों और सम्प्रदायों में चहुंमुखी शान्ति व समरसता स्थापित होगी।

अनुवाद : राम बिहारी विश्वकर्मा

हमारा-देश

कु. प्रतिमा शर्मा

हम सबको प्राणों से प्यारा
लगे हमारा देश।
जहां शौर्य के झूले-झूलें
हंसते-हंसते वीर
दुश्मन की कुदृष्टि को फोड़ें
बलिदानों के तीर

हम सबको जीवन की धारा
लगे हमारा देश।
सत्य, अहिंसा और एकता
के धारे संकल्प
कभी स्वार्थ ढूंढ न पाया
सच का कोई विकल्प

हम सबको सब जग से न्यारा
लगे हमारा देश।
सर्व धर्म का सर्व कर्म का
है व्यापक सिद्धांत
सबकी उन्नति-सुखमय
सबके जीवन-आश्रम शांत
हम सब के आंखों का तारा
लगे हमारा देश।

207, चन्द्रप्रस्थ कालोनी,
माल रोड मुरार, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

भूमि सुधारों की उपेक्षा से किसानों के साथ दोहरा अन्याय

प. ईश्वर लाल 'वैश्य'

भूमि सुधारों का उद्देश्य सिर्फ खेत उपज की मात्रा बढ़ाना अथवा भूमि का उत्पादन बढ़ाना ही नहीं है—यद्यपि यह भी महत्वपूर्ण उद्देश्य है। भूमि सुधार कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य किसानों को शोषण से बचाना, उनके जीवन स्तर को सुधारना, समाज के अन्य वर्गों के साथ उन्हें समानता के स्तर पर लाना और यों कुल मिलाकर हमारे ग्रामीण जीवन में सामाजिक न्याय को प्रस्थापित करना भी है।

आजादी के पश्चात देश में योजनाबद्ध विकास का कार्यक्रम प्रारम्भ होने पर अर्थात् प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही भूमि सुधार के नाम पर (1) मध्यस्थों का अंत, (2) वास्तविक खेतिहरों को भू-स्वामित्व के अधिकार दिलाना, (3) भू-स्वामित्व का क्षेत्र सीमा निर्धारण, (4) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण एवं (5) सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने के कार्यक्रम अपनाए जाने का तय किया गया।

लेकिन हम देखते हैं कि प्रथम दो योजनाओं में आजादी के नए-नए जोश में शुरुआत में राजशाही समाप्त करने के साथ हमने जागीरदारी को भी समाप्त किया। जिनके पास अत्यधिक भूमि थी, उनसे उनको अतिरिक्त भूमि लेकर उसका वितरण भी किया। ज्ञातव्य है कि ये लोग देश की कृषि योग्य भूमि का करीब चालीस प्रतिशत दबाए बैठे थे और 1974 में उनसे प्राप्त की गई भूमि का मुआवजा करीब 670 करोड़ आंका गया था। देश में तब सिर्फ चार प्रतिशत खाते ही दस हैक्टेयर से अधिक भूमि के थे। लेकिन वे हमारी कुल कृषि भूमि का 31 प्रतिशत क्षेत्र दबाए बैठे थे। 1974 तक करीब 37.4 लाख काश्तकारों में 36.7 लाख हैक्टेयर भूमि पर स्वामित्व के अधिकार सौंपे गए अर्थात औसतन प्रति किसान को एक हैक्टेयर से भी कम भूमि दी जा सकी।

भूमि सुधार कार्यक्रम के क्रियान्वयन में विलम्ब होने या उसके असफल रहने का एक प्रमुख कारण शासन में इच्छा-शक्ति का अभाव तो था ही साथ ही कानूनों में भी ऐसे छिद्र छोड़ दिए गए थे, जिनका दुरुपयोग किया जाता रहा। उदाहरणार्थ भू-स्वामित्व के लिए भूमि-सीमा-निर्धारण (लैण्ड सीलिंग) कानून तो बना और लम्बे समय से काश्त करने वाले काश्तकारों को उनकी भूमि पर से बेदखल नहीं कर सकने का कानून भी बना, लेकिन उसमें यह गुंजाइश रखी गई कि जमींदार अपनी खुद-काश्त के नाम पर भूमि सीमा निर्धारण कानून की मर्यादा में रहकर चाहे जितनी जमीन रख सकता है। परिणामतः जमींदार ने अपने परिवार और रिश्तेदारों के वयस्क/अवयस्क सभी व्यक्तियों के नाम अधिकतर सम्भव-भूमि का नामान्तरण करवा लिया। इतना ही नहीं कई राज्यों में पटवारियों से मिलकर उन्होंने झूठे नाम पर भी जमीन का नामान्तरण करवाया। कुछ जमीन उन्होंने अपने बंधुआ-मजदूरों के नाम पर नामान्तरण करवा ली। वैधानिक तौर पर ये मजदूर उस जमीन के मालिक बन गए। लेकिन उनके पास न तो खेती करने के साधन थे और न खाद या बीज खरीदने की आर्थिक-क्षमता ही। यह सब उन्हें जमींदार से ही प्राप्त होता था। अरे! जिस भूमि पर उसकी झोपड़ी होती थी, वह जमीन भी जमींदार की होती थी और शादी-ब्याह, मौत-मरण अथवा बीमारी के अवसर पर कर्ज देकर जमींदार उन्हें हमेशा दबाए रहता था। वे किसी प्रकार जमींदार के खिलाफ बोल नहीं सकते थे।

कानून में एक तरफ निजी-काश्त और दूसरी तरफ स्वेच्छा से परित्याग की गुंजाइश होने से अपने परम्परागत काश्तकारों, जो पीढ़ियों से उनकी जमीन को जोत रहे थे, जमींदारों ने कागजों पर सच्चे-झूठे अंगूठे करवाकर और डरा-धमका कर जमीन छीन ली और उन्हें बेदखल कर दिया। इस प्रकार सामाजिक-न्याय के लिए भूमि-सुधार सम्बन्धी बनाए गए कानूनों की धज्जियां उड़ाई गई और राज्य उसे देखता रहा। कारण स्पष्ट था—शासन में इच्छा शक्ति की कमी थी। शासकों में अधिकांश उसी वर्ग से आए थे, जिनके हित जमींदारों के हितों के साथ बंधे थे। किसानों के लिए उनके पास आश्वासनों के अलावा और कुछ नहीं था। विचारणीय है कि 1974 तक पूरे देश में सिर्फ 11.5 लाख हैक्टेयर भूमि को ही अतिरिक्त (सरप्लस) घोषित करवाया जा सका और उससे

वितरण तो सिर्फ 6.3 लाख हैक्टेयर भूमि का ही हो सका। शेष मुकदमें बाजी में फंस गई।

काश्तकारों को धोखे में रखने के लिए दिसम्बर, 69 में शासक-दल ने अपने बम्बई अधिवेशन में एक वर्ष में ही भूमि-सुधारों को लागू करने की आवश्यकता को स्वीकार किया था और मार्च 76 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भी कृषि भूमि-सीमा-निर्धारण कानून को जून, 76 तक क्रियान्वित कर देने का प्रस्ताव पारित किया गया था। लेकिन यह सब कोरी लफ्फाजी थी और सारे निर्णय कागजों में ही धरे रह गए।

इस प्रकार किसानों एवं कृषि पर निर्भर अन्य लोग कृषि श्रमिक एवं कृषि से सम्बन्धित कारीगर वर्ग के साथ योजना काल के प्रारम्भ में ही अन्याय ही अन्याय हो रहा है। हमारे विकास कार्यक्रमों का अधिकांश लाभ शहरी-जनता ने उठाया है जबकि उसके लिए परिश्रम करने की जिम्मेदारी सदा ग्रामीण लोगों पर रही है।

1950-51 में देश की कुल आबादी का सत्तर प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर था, अर्थात् उनकी आय का बड़ा हिस्सा कृषि की प्रवृत्तियों से वे प्राप्त करते थे। उस समय देश में हो रही कुल आय का 59 प्रतिशत हिस्सा इन सत्तर प्रतिशत लोगों को मिलता था। इससे स्पष्ट होता है कि शेष कृषि से इन प्रवृत्तियों में लगे अर्थात् मोटे तौर पर शहरों-कस्बों में रहने वाले लगभग तीस प्रतिशत लोगों को कुल आय का 41 प्रतिशत हिस्सा मिलता था। प्रो. सीनोय की गणनानुसार कृषि पर निर्भर लोग की तब की प्रति व्यक्ति जो औसत आय थी, उससे गैर-कृषि वाली जनता की औसत आय लगभग ड्योढी थी।

जब प्रो. सीनोय ने 1977-78 की परिस्थितियों का अध्ययन किया। तब मालूम पड़ा कि गांवों की अथवा कृषि पर निर्भर लोगों की प्रति व्यक्ति शुद्ध आय लगभग उतनी ही है उसमें कोई वृद्धि नहीं हुई है। लेकिन शहरों अथवा गैर-कृषि के लोगों की प्रति व्यक्ति औसत आय 1950-51 के स्तर से दुगनी हो गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों क्षेत्रों के बीच 1950-51 में एक और 1.46 के अनुपात में जो अन्तर था वह बढ़कर अब एक और तीन के अनुपात में हो गया था अर्थात् दोनों क्षेत्रों के बीच असमानता में इतनी वृद्धि हुई अथवा समानता लाने के हमारे घोषित उद्देश्य से हम इतने दूर चले गए।

इसी बात को दूसरी तरह से कहें जो 1950-51 में सत्तर प्रतिशत आबादी मुख्यत: कृषि क्षेत्र में से अपनी आय प्राप्त करती थी और 1985-86 में कर रही है उसमें कोई अंतर नहीं आया है। अर्थात् देश की सत्तर प्रतिशत लोग अब भी कृषि क्षेत्र में से ही अपनी आय प्राप्त करती रही। परन्तु 1985-86 में वह राष्ट्रीय आय का सिर्फ 32.34 प्रतिशत हिस्सा ही प्राप्त करती थी। जबकि 1950-51 में पहले बताए अनुसार वह राष्ट्रीय आय का 59 प्रतिशत हिस्सा पाती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि गैर-कृषि लोग जो पहले भी तीस प्रतिशत थी और अब भी लगभग उतनी ही थी और जो पहले 41 प्रतिशत हिस्सा पाती थी, वह अब 66-67 प्रतिशत हिस्सा पाने लगी अर्थात् कृषि-क्षेत्र वालों को आय का जो हिस्सा मिलता है, उस आय का स्तर यदि इस तीस प्रतिशत लोग के मुकाबले गिना जाये, तो उन्हें सिर्फ 14 से 15 प्रतिशत हिस्सा ही मिलता है। इस प्रकार 1985 में गांव अथवा कृषि-क्षेत्र की औसत प्रति व्यक्ति आय के मुकाबले गैर-कृषि क्षेत्र की औसत आय साढ़े-चार गुना हो गई। जो अनुपात 1950-51 में एक और 1.46 का था, 1977-78 में एक और तीन का था, वह 1985 में एक और साढ़े चार का हो गया।

इस महत्वपूर्ण मुद्दे को समझने के लिए दूसरी दृष्टि से भी देखें। विगत पैंतीस वर्षों अर्थात् 1950-51 से लेकर 1985-86 के बीच अपनी औसत राष्ट्रीय आय की शुद्ध वृद्धि 3.5 प्रतिशत की दर से हुई और इसी काल के दौरान अपनी जनसंख्या में वृद्धि 2.2 प्रतिशत की दर से हुई ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि का अनुपात अधिक होने से और कुल जनसंख्या में भी वृद्धि होने से गांवों अथवा कृषि-क्षेत्र के लोगों को राष्ट्रीय आय की वृद्धि के औसत का कोई लाभ नहीं मिला और राष्ट्रीय आय की सम्पूर्ण वृद्धि शहरी अथवा गैर-कृषि के लोगों के हिस्से में ही हुई। परिणामत: दोनों क्षेत्रों की आय की असमानता में भी अत्यधिक वृद्धि हुई। यदि हम कृषि क्षेत्र में आय में हुई शुद्ध वृद्धि और साथ ही गांवों की जनसंख्या वृद्धि को भी ध्यान में लें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों वृद्धियां समान हैं अर्थात् कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति औसत आय पिछले 35 वर्षों में लगभग स्थिर रही है।

यदि सरकारी आंकड़ों पर विचार किया जाए तो 1970-71 की कीमतों के आधार पर प्रति व्यक्ति औसत राष्ट्रीय आय 1958 में 462 रुपये थी जो 1985 में बढ़कर 762 रुपये हो गई। लेकिन उसी काल में कृषि क्षेत्र में वह 405 रु. से बढ़कर सिर्फ 415 रु. ही हुई और गैर-कृषि में 593 से बढ़कर 1212 रु. हुई। अर्थात् कृषि क्षेत्र में वह स्थिर ही रही, लेकिन गैर कृषि क्षेत्र में दुगुनी से भी अधिक हो गई। इसे यों भी कहा जा सकता है कि 1951 में कृषि क्षेत्र और गैर-कृषि के लोगों की प्रति व्यक्ति औसत आय में जो एक और 1.46 का अनुपात था, वह 1985 में बढ़कर एक और 2.93 का हो गया।

यदि हम अपनी कृषि-प्रवृत्ति की ओर भी थोड़ा ध्यान देंगे तो मालूम पड़ेगा कि इन तीस-चालीस वर्षों में उसके स्वरूप में भी बड़े परिवर्तन नहीं हुए हैं, क्योंकि जनसंख्या वृद्धि का अधिकांश बोझ कृषि क्षेत्र पर ही पड़ा है। इस कारण से प्रति किसान खेती

की जमीन का 1960-61 में जो 2.69 हैक्टेयर का औसत था, वह 1980-81 में घटकर 1.69 हैक्टेयर रह गया। इसी परिवर्तन काल के दौरान ढाई एकड़ से कम भूमि वाले सीमान्त कृषकों की जो संख्या 1960-61 में 4.07 प्रतिशत थी, वह 1980-81 में बढ़कर 56.5 प्रतिशत हो गई, जबकि लघु-कृषकों का हिस्सा इस परिवर्तन के कारण कृषि पर निर्भर आबादी में 1960-61 में कृषि श्रमिकों का जो हिस्सा 22.9 प्रतिशत था, वह बढ़कर 1971 में 30 प्रतिशत और 1981 में 36.3 प्रतिशत हो गया। अर्थात् पहले कुल कृषि का 18 प्रतिशत सीमान्त एवं लघु-किसानों के पास था, वह अब बढ़कर 26 प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि सीमान्त एवं लघु-कृषकों की संख्या और अनुपात दोनों में वृद्धि हुई और अधिकांश जोतें अब सीमान्त जोतों की गिनती में आ गईं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश किसानों के लिए कृषि-उत्पादन के मुख्य स्रोत की मात्रा कम हो गई और अब तक जो सीमान्त कृषक थे उनमें से अधिकांश को भूमिहीन होकर कृषि-श्रमिकों की श्रेणी में जाना पड़ा।

1966-67 के बाद हरित-क्रान्ति हुई। नए प्रकार के बीज आए, रासायनिक खाद का उपयोग बढ़ा, जन्तु नाशक दवाओं का व्यापक प्रयोग हुआ और इससे कई स्थानों पर उत्पादन में गणना मात्र वृद्धि हुई। उसके साथ ही यह भी सत्य है कि 1967-68 के पहले खेत-उत्पादन में जो भी वृद्धि हुई हो, उसमें कुल मिलाकर उत्पादकता में वृद्धि की अपेक्षा कुल कृषि-भूमि में हुई वृद्धि भी भागीदारी थी लेकिन 67-68 के बाद की उत्पादन वृद्धि तो मुख्यत: प्रति एकड़ उत्पादकता में वृद्धि के कारण ही हुई। इस बात से यह सिद्ध होता है कि अब जबकि कृषि भूमियों में वृद्धि हो सकने की गुंजाइश नहीं है यदि हमें उपर्युक्त 2.6 प्रतिशत की दर से वृद्धि चालू रखनी हो तो प्रति एकड़ उत्पादकता आज की अपेक्षा भी अधिक दर से बढ़ानी होगी और इसके लिए योजना आयोग को कृषि क्षेत्र पर अधिक ध्यान देना होगा। तकनीकी विकास की दृष्टि से भी और कृषक में आत्म विश्वास और आत्म सन्तोष के विकास की दृष्टि से भी और इसके लिए भूमि सुधार के घोषित और वांछिक कार्यक्रमों पर आयोग को अपनी पूरी शक्ति लगानी होगी।

कृषि-क्षेत्र में यदि उपजों पर ध्यान दें तो मालूम पड़ेगा कि विभिन्न उपजों के बीच संतुलन नहीं साधा गया है। कुल उत्पादन में धान का हिस्सा 40 से 42 प्रतिशत के बीच बना रहा है। लेकिन गेहूं के बारे में पिछले पच्चीस वर्षों में काफी परिवर्तन हुआ है। 1950-51 में कुल उपज में गेहूं का हिस्सा 12 से 13 प्रतिशत के करीब था, जो 1985 में बढ़कर 31 से 32 प्रतिशत हो गया। लेकिन इसी काल में दालों और मोटे अनाजों के हिस्से में गणनामात्र कमी हुई है। 1950-51 में मोटे अनाज का हिस्सा तीस प्रतिशत था जो 85-86 में 16 प्रतिशत से 17 प्रतिशत ही रह गया और दालों का हिस्सा 16 प्रतिशत से घटकर 8 प्रतिशत हो गया। दालों के विषय में कुल क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता सभी में कमी आई है। तेल-बीज के विषय में भी चित्र आशास्पद नहीं है। 1980-81 में उत्पादन 120 से 121 लाख टन था, जब 150 लाख टन के लक्ष्यांक बार-बार देखे जाने के बावजूद उसका उत्पादन 110 से 130 लाख टन के बीच हो रहा है और परिणामत: तेल का हमेशा आयात करना पड़ता है। इस स्थिति के कारण राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन का अभाव तो है ही, लेकिन साथ ही बड़े जमींदारों द्वारा राष्ट्रीय हित की चिन्ता किए बगैर अपने निजी स्वार्थों की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार को ध्यान में रखकर अधिक लाभ देने वाली उपज (क्राफ) का चयन करना भी है, जो परोक्ष रूप से बाजार भावों को नियंत्रित करते हैं जिससे छोटे किसान को भी उनका अनुसरण करना पड़ता है। और यह सब जानते-बूझते सरकार द्वारा इस विषय में मौन रहना इस अन्याय का समर्थन करते रहने के बराबर है।

यदि अनाज, तेल, कपड़ा आदि के प्रति व्यक्ति औसत उपभोग की जांच की जाए तो 1951 और 1985 के बीच कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। 1952 में प्रति व्यक्ति अनाज का उपभोग 181.20 किलोग्राम था जो 1985 में 185.18 कि. ग्रा. हो गया। इसके मुकाबले दूध और दालों का प्रति व्यक्ति औसत उपयोग घट गया जिससे जरूरी प्रोटीन प्राप्त करने में कार्रवाई हुई और मानव स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ा। उधर, शक्कर, तेल, सिंथेटिक वस्त्र, बिजली, स्कूटर, मोटर गाड़ियों आदि का उपयोग काफी बढ़ गया। यह बताना है कि गैर-कृषि–क्षेत्रों में कृषि उपजों की आवश्यकता की पूर्ति सस्ते भावों पर संतोषजनक ढंग से होते रहने के कारण उनकी आय की वृद्धि अन्य वस्तुओं के उपयोग की वृद्धि में लगाई गई।

अब देश में शासन परिवर्तन हुआ है। श्री रामकृष्ण हेगड़े योजना आयोग के उपाध्यक्ष नियुक्त किए गए हैं। श्री हेगड़े अपने राज्य में योजना मंत्री रह चुके हैं और कर्नाटक में ग्रामीण बेरोजगारी से निपटने के लिए भूमि सेना का सफल प्रयोग भी वे कर चुके हैं। अतएव यह आशा की जा सकती है कि कृषि विकास या भूमि सुधार के नाम पर सिर्फ उत्पादन वृद्धि को ही लक्ष्य नहीं बनाया जाएगा बल्कि उतना ही महत्व भूमि सुधारों के मानवीय-पक्ष अर्थात् आर्थिक एवं सामाजिक समानता के विस्तार को भी दिया जाएगा।

82, कसारवाड़ा, बांसवाड़ा (राज) पिन-327001

गैर-लाभदायक जोतों को लाभप्रद बनाएगी चकबंदी

डा. विनोद गुप्ता

बढ़ती आबादी ने खाद्य तथा आवास समस्या में इजाफा करने के साथ उपजाऊ भूमि को भी अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बांट दिया है। नतीजन इन छोटी कृषि जोतों की उत्पादन क्षमता गंभीर रूप से प्रभावित हुई है। ये जोतें इतनी छोटी होती हैं कि किसान खेती में आधुनिक तौर तरीकों के इस्तेमाल की हिम्मत नहीं जुटा पाता। इन गैर लाभदायक जोतों को लाभप्रद बनाने का एकमात्र उपाय चकबंदी है।

कृषि प्रधान भारत देश में पीढ़ी दर पीढ़ी भूमि के निरन्तर बंटवारे से खेतों का आकार सिमटता जा रहा है। फलस्वरूप उनकी आर्थिक उपयोगिता का ह्रास हुआ है। इस तरह की गैर-लाभदायक जोतों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। भूमि के बंटवारे ने खेतों के उपविभाजन की समस्या को जन्म दिया है। समस्या केवल यहीं तक सीमित नहीं है, बल्कि एक ही व्यक्ति के छोटे-छोटे खेत अलग-अलग जगह बिखरे हुए हैं। अपखंडन की यह समस्या उपविभाजन की समस्या से भी अधिक गंभीर है।

जोतों का उपविभाजन और अपखंडन यद्यपि दो भिन्न समस्याएं हैं, लेकिन उनके प्रभाव एक से ही हैं। उपविभाजन से तात्पर्य एक जोत के कई व्यक्तियों के बीच विभाजित होने से है। अपखंडन से तात्पर्य एक व्यक्ति की कुल जोत के अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होने से है जो एक ही जगह न होकर दूर-दूर बिखरे होते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएं एक परिपाटी के रूप में एक लंबे समय से चली आ रही हैं, और इससे न जाने कितनी बड़ी जोतें छोटे टुकड़ों में विभाजित हो चुकी हैं।

भारत में कार्यशील जोतों का औसत आकार निरन्तर घटता चला जा रहा है। 1961-62 में भारत में कार्यशील जोत का औसत आकार 2.6 हैक्टेयर था। 1970-71 को संदर्भ वर्ष मानकर पहली बार पूर्ण गणना के आधार पर कृषि आंकड़ों का संकलन किया गया था। ये आंकड़े कृषि जोतों और उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं।

इन आंकड़ों के अनुसार देश में कुल कार्यशील जोतें 3.5 करोड़ रुपये की थीं जिसमें 16.2 करोड़ हैक्टेयर भूमि समाई हुई थी। इनमें से आधी से अधिक जोतें एक हैक्टेयर से कम की थीं। इस प्रकार 1970-71 में कार्यशील जोतों का औसत आकार 2.28 हैक्टेयर था।

दूसरी कृषि गणना 1976-77 को संदर्भ वर्ष मानकर की गई। इसकी गणना के आंकड़ों से पता चलता है कि बड़ी जोतों की बजाए अब छोटी जोतों में ज्यादा खेती की जा रही है और इस प्रकार औसत भू-स्वामित्व 1976-77 में घटकर औसतन 2 हैक्टेयर ही रह गया। 1986-87 में जोत का औसत आकार 1.79 हैक्टेयर अनुमानित है। इस प्रकार कृषि जोत का औसत आकार निरन्तर घट रहा है। इसके विपरीत विदेशों में कृषि जोतों का आकार इतना अधिक होता है कि आप और हम तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यहां भारत में कृषि जोत का औसत आकार दो हैक्टेयर से भी कम है, वहां कनाडा में 187.54, मैक्सिको में 142.28 और अमेरिका में 157.61 हैक्टेयर है।

हमारे देश में भूमि का उपविभाजन और अपखंडन प्रायः साथ-साथ ही पाया जाता है। उपविभाजन और अपखंडन का सबसे बड़ा कारण उत्तराधिकार के नियम हैं। इससे भूमि के वितरण में समानता तो अवश्य आ जाती है किन्तु तीन-चार पीढ़ियों में ही भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात उसकी भू-संपत्ति का उसके उत्तराधिकारियों में समान विभाजन होता है। भारतीय किसान अपनी पैतृक भूमि से बहुत प्रेम करता है जिसके कारण वह अपनी पैतृक भूमि में से चाहे उसे छोटा-सा टुकड़ा ही क्यों न मिले, पाने के लिये प्रयत्नशील रहता है। प्रत्येक हिस्सेदार अपना हिस्सा एक ही जगह लेना पसंद न करते हुए पारिवारिक भूमि की प्रत्येक किस्म में अपना हिस्सा लेना चाहता है। अतः प्रत्येक हिस्सेदार को न केवल छोटे-छोटे टुकड़े ही मिलते हैं वरन् वे टुकड़े काफी दूर-दूर भी होते हैं। इस विभाजन का यह भी कारण है कि आज संयुक्त परिवार प्रणाली प्रायः लुप्त हो गई है। संयुक्त परिवारों के विघटन ने भूमि के बंटवारे करने में अपना योगदान किया है।

भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव भी भूमि के उपविभाजन और उपखंडन के लिये उत्तरदायी है। हमारे देश

का किसान भूमि को गिरवी रखकर कर्ज लेता है किन्तु कर्ज चुकाने की अन्य कोई व्यवस्था नहीं होने से भूमि का एक हिस्सा बेचकर कर्ज चुकाता है। किसानों की अशिक्षा, अज्ञानता और अन्यत्र रोजगार के अवसरों के अभाव के कारण भूमि का उपविभाजन और अपखंडन बहुत बड़ी मात्रा में होता है।

भूमि के उपविभाजन और अपखंडन के अनेक दुष्परिणाम सामने आए हैं। छोटे-छोटे खेतों पर कृषि कार्य करने से लागत बहुत बढ़ जाती है और उनकी लाभदायकता समाप्त हो जाती है। आकार में बहुत छोटे खेत होने की वजह से न तो हल व बैलों का ही समुचित उपयोग होता है और न ही अन्य औजारों का। कुछ तो इतने छोटे आकार के होते हैं कि उन्हें ठीक से जोता या बोया भी नहीं जा सकता। इस प्रकार वे गैर लाभदायक जोत बन जाते हैं। कई मर्तबा उन्हें बिना जोते ही छोड़ दिया जाता है। खेती में आधुनिक तौर तरीकों का उपयोग भी इस कारण संभव नहीं हो पाता। छोटे-छोटे खेतों पर ट्रैक्टरों, स्क्रेपरों, बुलडोजरों, क्रेशरों आदि का प्रयोग बड़ा कठिन है।

यदि खेत छोटे-छोटे आकार के हैं तो सिंचाई हेतु कुएं भी नहीं खोदे जा सकते हैं। यदि अन्य कुओं से पानी लाया जाए तो उसकी लागत अधिक बैठती है। इसके अलावा यदि खेत दूर-दूर बिखरे हैं तो उनमें अलग-अलग बाड़ें लगाने और मेड़े छोड़ने में भी अतिरिक्त व्यय होता है। बहुत-सी भूमि मेड़ आदि के रूप में बेकार चली जाती है। अनुमान है कि कृषि योग्य भूमि का 3 प्रतिशत भाग मेड़ों में घिरा है।

उपविभाजन और अपखण्डन समय और शक्ति का व्यर्थ में अपव्यय होता है। यही नहीं जोतें छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होने से किसानों के बीच में रास्ता तथा चोहद्दी के लिए आए दिन झगड़े हुआ करते हैं।

यदि खेत दूर-दूर तक बिखरे हैं तो उन पर निगरानी रखना भी कठिन होता है और फिर एक खेत से दूसरे खेत में खाद, बीज और अन्य औजार लाने ले जाने में अनावश्यक व्यय भी होता है। छोटे-छोटे खेतों पर सघन खेती करने में भी कठिनाई होती है। इन छोटे आकार के खेतों की जमानत पर ऋण भी सरलता से नहीं मिलता। अतः भूमि के उपविभाजन और अपखंडन की इस गंभीर समस्या को तत्काल हल करने की आवश्यकता है जिसका एकमात्र हल चकबंदी है। चकबंदी से आशय एक कृषक के बिखरे हुए खेतों को एक चक के रूप में कर देना है। अर्थात् चकबंदी एक परिवार के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर करने की प्रक्रिया है। चकबंदी में किसान की संपूर्ण जोत एक स्थान पर कर दी जाती है जिसके द्वारा किसान को कई बिखरे हुए टुकड़ों के स्थान पर एक ही जगह में सारी भूमि प्राप्त हो जाती है।

चकबंदी भी दो प्रकार की हो सकती है—ऐच्छिक चकबंदी और अनिवार्य चकबंदी। ऐच्छिक चकबंदी भारत में सर्वप्रथम पंजाब में 1921 में आरंभ हुई थी। इसमें चकबंदी करना किसान की स्वेच्छा पर निर्भर रहता है। मध्य प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल आदि में ऐच्छिक चकबंदी की जाती है। कई मर्तबा किसान चकबंदी के लाभों को समझ नहीं पाते, अलावा इसके उन्हें अपनी पैतृक भूसंपत्ति के प्रति मोह भी रहता है। परिणामस्वरूप वह उसे बदलना नहीं चाहता। लेकिन शिक्षा का प्रसार और उचित मार्गदर्शन द्वारा स्वैच्छिक चकबंदी के लिए उन्हें तैयार किया जा सकता है।

अनिवार्य चकबंदी में किसान को अनिवार्य रूप से चकबंदी करनी पड़ती है। अनेक राज्यों ने इस संबंध में कानून बना दिए हैं। भारत में 9 राज्य ऐसे हैं जहां चकबंदी हेतु किसी तरह का कोई कानून नहीं जबकि पंजाब और हरियाणा में चकबंदी का कार्य पूरा हो चुका है।

यदि सभी राज्यों में चकबंदी संबंधी व्याख्या की जाए तो इससे न केवल कृषि उत्पादन एवं आय में ही वृद्धि होगी वरन् श्रम एवं अन्य साधनों की बचत भी होगी।

16, सुदामा नगर एक्टेंशन-2,
रामटेकरी, मन्दसौर (म. प्र.) 458001

भूमि सुधार और गरीबी उन्मूलन : क्षेत्रीय सर्वेक्षण

अंगसुमन बासु

गरीबी की समस्या से निपटने तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए भूमि सुधारों को अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक माना गया है। साथ ही इस बात को भी मान्यता मिली है कि भूमि सुधारों के अन्तर्गत जिस अतिरिक्त भूमि का आबंटन किया जाता है उसमें ग्रामीण इलाकों में बड़ी संख्या में भूमिहीन लोगों को स्थाई रूप से संपत्ति का आधार प्राप्त हो जाता है जिससे वे भूमि पर आधारित तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तिअर्जक गतिविधियां शुरू कर सकते हैं। इस संदर्भ में छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में कहा गया था कि 5 एकड़ से अधिक भूमि स्वामित्व वालों से लेकर 5 प्रतिशत उपजाऊ भूमि को अगर छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों में बांट दिया जाए तो इससे इस वर्ग की आय में 20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में कहा गया है कि कृषि विकास में तीव्र विकास हासिल करने तथा गरीबी और बेरोजगारी से निपटने के लिए भूमि सुधारों को प्रभावकारी ढंग से लागू किया जाना अत्यावश्यक है। लेकिन देश में योजनाबद्ध कार्यक्रम की शुरुआत से ही विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार उपाय किए जा रहे हैं और इन उपायों की सफलता भी एक समान नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में यहां पश्चिम बंगाल के एक जिले का सर्वेक्षण किया जा रहा है जिसमें पट्टाधारकों (भूमि हदबंदी के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि पाने वाले लोग) पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

इस अध्ययन के लिए नाडिया जिला चुना गया है। बंगला देश की सीमा से लगे इस जिले की ग्रामीण जनसंख्या (1981 की जनगणना के अनुसार) 23,38,848 है जिसमें से 2,47,457 लोग कृषक हैं। छोटे और मझौले किसानों की संख्या (73,373 तथा 1,27,605 क्रमानुसार) की तुलना में खेतिहर मजदूरों की संख्या 2,21,457 से कहीं अधिक है। कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों (इन लोगों की आबादी 7,76,924 है) का प्रतिशत 26.2 है जबकि अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत 1.89 है (आबादी 55,984)। चूंकि यह जिला राजनीतिक रूप में पूर्ण सजग है तथा कृषकों के सशक्त संगठनों का यहां अभाव नहीं है इसलिए पश्चिम बंगाल भूसंपत्ति अधिग्रहण अधिनियम, 1953 तथा पश्चिम बंगाल भूमि सुधार अधिनियम, 1955 के अंतर्गत भूमि आबंटन के लिए शायद ही कोई अतिरिक्त उपजाऊ भूमि बची है। लेकिन हो सकता है कि राज्य के हाल में बने अधिनियम के अंतर्गत अब भी कुछ अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो सके क्योंकि इस अधिनियम में भूमि हदबंदी की सीमा 15 एकड़ से घटा कर 12 एकड़ कर दी गई है। संशोधित अधिनियम में हदबंदी की सीमा से बाहर विभिन्न प्रकार की गैर-कृषि भूमि रखने की व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया गया है।

नाडिया जिले में आबंटित की गई निहित कृषि भूमि का क्षेत्रफल तथा उससे लाभ पाने वालों की संख्या 30 जून 1987 को इस प्रकार थी:

आबंटित भूमि का क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	लाभार्थियों की संख्या				
	अ. जा.	अ. जनजाति	अन्य	संस्थान और संस्थाएं	कुल
5,93,917	18,089 (31.74%)	4,135 (7.26%)	34,763 (61%)		56

इस प्रकार जिले में निहित कृषि भूमि का औसत वितरण मात्र 0.104 हैक्टेयर है जो राज्य की औसत 0.196 से भी काफी कम है तथा शायद देश में सबसे कम वितरण औसत में से एक है।

अध्ययन

इन्हीं परिस्थितियों में यह अध्ययन एक अल्पावधि में नवंबर 1988 में किया गया—जब भूमिहीन लोगों को और वितरण के लिए राज्य सरकार के पास लगभग कोई भूमि नहीं बची हुई थी।

अध्ययन के लिए यह आवश्यक समझा गया कि निहित भूमि के वितरण से लाभ पाने वालों के प्रत्येक वर्ग की परिस्थितियों

का सर्वेक्षण किया जाए विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थियों का। इसके लिए ऐसे चार भू-राजस्व मण्डलों (सर्किलों) का चयन किया गया (इस जिले में कुल 16 भू-राजस्व मण्डल हैं) जिसमें पट्टाधारकों (लाभार्थियों में अनुसूचित जातियों और अ. जनजातियों की संख्या काफी अधिक है। ये भू-राजस्व मण्डल थे:

1. कृष्णगंज-सदर (उत्तरी) सबडिवीजन के अंतर्गत;
2. तेहाट्टा-सदर (दक्षिण) सबडिवीजन के अंतर्गत;
3. हंसखाली-राणाघाट सबडिवीजन के अंतर्गत; तथा
4. हरिघाटा-कल्याणी सबडिवीजन के अंतर्गत;

इनमें से प्रत्येक मण्डल से 15-15 परिवार इस आधार पर चुने गए:

क) प्रत्येक भू-राजस्व मण्डल में ऐसे गांवों के समूहों का पता लगाया गया जहां के पट्टाधारकों में अ. जातियों और अ. जनजातियों की संख्या काफी हो।

ख) लाभार्थियों की सूची में से ऐसे गांवों के किन्हीं भी 15 परिवारों को चुन लिया गया।

इस प्रकार चुने गए प्रत्येक परिवार से पूर्व निर्धारित प्रश्नावली के अनुसार प्रश्न पूछे गए। चूंकि समय और संसाधनों की कमी के कारण केवल 60 परिवार (15x4) का ही अध्ययन किया गया—जबकि वास्तविक लाभार्थियों की संख्या लगभग 57 हजार थी—इसलिए इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों को खासतौर से व्याप्त स्थिति का दर्जा देना मेरा प्रयास कतई नहीं है।

तालिका-1 में उन परिवारों की सामाजिक स्थिति दर्शाई गई है जिनको इस अध्ययन में शामिल किया गया:

तालिका-1

भू-राजस्व मंडल का नाम	सर्वेक्षित परिवारों की संख्या	अनु. जाति	अनु. जनजाति	अन्य
हंसखाली	15	7	5	4
हरिणघाटा	15	6	5	4
तेहाट्टा-1	15	7	4	4
कृष्णगंज	15	6	3	6
कुल:	60	26	16	18
प्रतिशत	100	43.33	26.67	30.00

तालिका से ज्ञात हो जाएगा कि इस अध्ययन के लिए चुने गए परिवारों में अ. जा. और अ. जनजातियों के परिवारों का प्रतिशत भूमि आबंटन कार्यक्रम के अंतर्गत लाभ पाने वाले अ. जाति और अ. ज. के परिवारों या जिले में उनके वास्तविक प्रतिशत से कहीं अधिक है लेकिन क्योंकि गरीबों में अ. जातियों और अ. ज. के लोगों का अधिक प्रतिशत है इसीलिए अध्ययन के लिए उनका प्रतिशत अधिक रखा गया।

तालिका-2 में सर्वेक्षित परिवारों का आर्थिक स्तर दर्शाया गया है:

तालिका-2

मंडल का नाम	केवल खेती	खेतिहर मजदूर/ बर्गादार	सर्वेक्षित परिवारों की संख्या
हंसखाली	x	15	15
हरिणघाटा	x	15	15
तेहाट्टा-1	x	15	15
कृष्णगंज	3	12	15
कुल:	3	57	60

तालिका से ज्ञात होता है कि 95% लाभार्थी खेतिहर मजदूर/ बर्गादार हैं जबकि केवल 5% कृषक सीमा से भी नीचे के किसान। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अतिरिक्त भूमि का आबंटन इसलिए किया गया ताकि सभी वर्गों के भूमिहीन लोगों को आर्थिक दशा सुधारने के लिए स्थाई संपत्ति दी जा सके तथा भू-संबंधों में वांछित परिवर्तन हासिल किया जा सके।

लाभार्थियों का आर्थिक स्तर

जिले में अतिरिक्त भूमि की कमी के कारण नाडिया जिले में भूमि आबंटन का स्तर वांछित स्तर से बहुत कम रहा है। अतः केवल अतिरिक्त भूमि के आबंटन (वर्तमान स्तर पर) से ही इन लाभार्थियों के आर्थिक स्तर में कोई खास परिवर्तन संभव नहीं हो पाएगा भले ही इन पट्टाधारकों को सिंचाई तथा अन्य सुविधाएं क्यों न प्रदान कर दी जाएं।

तालिका-3 से ज्ञात हो जाता है कि सर्वेक्षित परिवारों के 90 प्रतिशत को 0.5 एकड़ से भी कम भूमि मिल पाई है। भूमि के

इतने छोटे टुकड़े पर अगर अत्याधुनिक तरीकों से भी कृषि कार्य किया जाए तो भी उससे इन परिवारों के लिए समुचित आय अर्जित नहीं की जा सकती है।

तालिका-3

पट्टे पर मिली भूमि के आधार पर परिवारों का वर्गीकरण

मंडल का नाम	पट्टे पर मिली भूमि का आकार (एकड़ में)				
	0.10 तक	0.11-0.20	0.21-0.33	0.34-0.50	0.50 से अधिक
हंसखाली	4	3	6	2	x
हरिणघाटा	7	6	2	x	x
तेहाट्टा-1	3	6	1	1	4
कृष्णगंज	3	3	3	4	2
कुलः	17	18	12	7	6
प्रतिशत	28.33	30.00	20.00	11.67	10.00

सर्वेक्षित 60 परिवारों में से 10 परिवारों (16.67%) को केवल मकान बनाने के लिए ही भूमि का पट्टा दिया गया अर्थात् उन्हें कृषि के लिए भूमि नहीं दी गई (देखें तालिका-4)। केवल ऐसी भूमि से ही इन 10 परिवारों के लिए कोई आय पैदा नहीं हो सकती है। लेकिन मकान बनाने के लिए भूमि मिलने से इन परिवारों का कुछ तो लाभ हुआ है और ऋण देने वाली संस्थाओं की नजर में भी उनका स्तर बढ़ा है।

तालिका-4

पट्टे पर मिली भूमि का वर्गीकरण

भूमि का उपयोग	हंस-खाली	हरिण-घाटा	तेहा-ट्टा-1	कृष्ण-गंज	कुल
खेती	12	10	13	15	50 (83.33%)
मकान बनाने के लिए	3	5	2	X	10 (16.67%)
बंजर	X	X	X	X	X
कुलः	15	15	15	15	60

सर्वेक्षित परिवारों की वार्षिक आय दो चरणों में आंकी गई—पहले उस वर्ष में जबकि पट्टा दिया गया था और दूसरे तब जब यह अध्ययन किया गया (वर्ष-1988) जिससे तब तक पट्टे की भूमि का खेती या अन्य काम के लिए इस्तेमाल किया जा चुका था। ये आय तालिका-5 और 6 में दी जा रही है

तालिका-5

भूमि का पट्टा मिलने से पहले परिवारों की आय
(प्रतिवर्ष रुपयों में)

भू-राजस्व मंडल	2,500 तक	2501-5000	5,001-7,500	7501-10000	10,000 से अधिक	कुल परिवार संख्या
हंसखाली	6	8	1	---	—	15
हरिणघाटा	9	4	—	2	—	15
तेहाट्टा-1	12	3	—	...	—	15
कृष्णगंज	8	7	–	..	--	15
कुलः	35	22	1	2		60
प्रतिशतः	58.33	36.67	1.67	3.33	--	100

तालिका-6

पट्टा मिलने के बाद परिवारों की वार्षिक आय (रु. में)

मंडल	2500 तक	2501-5000	5001-7,500	7501-10000	10,000 से अधिक	कुल परिवारों संख्या
हंसखाली	1	12	2	X	—	15
हरिणघाटा	X	13	1	3	8	15
तेहाट्टा-1	2	12	1	X	X	15
कृष्णगंज	X	7	7	X	1	15
कुलः	3	44	11	3	9	60
प्रतिशतः	5	56.67	18.33	5	15	100

इन दोनों तालिकाओं से स्पष्ट है कि भूमि का पट्टा मिलने से पहले 95 सर्वेक्षित परिवार गरीबी के जाल में फंसे हुए थे लेकिन पट्टा मिलने के बाद उनकी आर्थिक स्थिति में भारी सुधार आ गया।

भू-राजस्व मंडल (सर्किल) हरिणघाटा में जिन 15 परिवारों का सर्वेक्षण किया गया उनमें से 11 परिवारों की आय तो 30,000 रु. को भी पार कर गई। इस पारिवारिक समृद्धि का एकमात्र कारण पट्टे की भूमि का इस्तेमाल नहीं था बल्कि परिवार के सदस्यों द्वारा विभिन्न रोजगार और नौकरियां कर लेना भी था। तालिका-5 और 6 से यह भी स्पष्ट है कि दोनों निम्नतम आय वर्गों के परिवार भूमि का पट्टा पाने के बाद अपनी आय में काफी वृद्धि कर सके। पट्टा पाने से पहले एक भी परिवार की आय 10,000 रु. से अधिक नहीं थी लेकिन पट्टा मिलने के बाद परिवार (15%) स्वयं को इस आर्थिक स्तर तक

पहुंचा सके। इसी प्रकार 2501-5000 रु. से लेकर 7501-10000 रु. तक के आय वर्गों में भी परिवारों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। साथ ही पट्टा मिलने के बाद निम्नतम आय वर्ग (2,500 रु. तक) में परिवारों की संख्या में भारी कमी आई—58.33% से कम हो कर मात्र 5% तक आ जाना। जहां एक ओर यह सत्य है कि इन परिवारों की वार्षिक आय में इस वृद्धि का एक कारण कीमतों में हुई वृद्धि भी है वहीं अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट रूप से स्थापित हुई कि पट्टे पर मिली भूमि का खेती या अन्य आय अर्जक कार्यों के लिए इस्तेमाल से इन परिवारों के आर्थिक स्तर में सुधार आया।

चूंकि अतिरिक्त भूमि आबंटन के लाभार्थी अधिकतर निर्धन होते हैं तथा उन्हें मिली भूमि भी उतनी उपजाऊ नहीं होती है इसलिए 1975-76 से एक योजना लागू की गई जिसके अंतर्गत अतिरिक्त आबंटन के लाभार्थियों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। लेकिन सर्वेक्षित परिवारों में से केवल 3 परिवारों ने ही इस प्रकार की वित्तीय सहायता पाने की बात स्वीकार की। यह वास्तव में बड़ी विचित्र बात है कि केवल 3 परिवारों तक ही यह सहायता पहुंच सकी और इसी से क्रियान्वयन एजेंसियों की सक्षमता का भी पता चल जाता है। वास्तव में यह वित्तीय सहायता अगर सब को नहीं तो कई और परिवारों को तो मिलनी ही चाहिए थी।

तालिका-7

भू-राजस्व मंडल	डी. आर. डी.ए.	व्यावसायिक बैंक	आर. आर. बी. एस.	सहकारी बैंक और संस्थाएं	सरकारी विभाग	सहायता संख्या
हंसखाली	2	x	x	x	x	13
हरिणघाटा	2	x	x	2	1	10
तेहाट्टा- I	4	x	x	x	1	6
कृष्णगंज	3	2	2	3	3	2
कुल:	11	2	2	5	5	31
प्रतिशत	18.33	10	3.33	8.33	8.33	51.67

इसी अध्ययन के दौरान लाभार्थी परिवारों से यह भी पूछा गया कि उन्हें अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रम लघु सिंचाई के लिए विशेष सहायता कार्यक्रम, व्यावसायिक बैंकों/आर. आर. बी. एस./सहकारिताओं तथा अन्य सरकारी विभागों से मिलने वाली सहायता के साथ संबंध तालिका 7 में दर्शाया गया है।

तालिका से स्पष्ट है कि अतिरिक्त भूमि आबंटन कार्यक्रम को अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के साथ प्रभावकारी ढंग से नहीं जोड़ा जा सका है। भूमि सुधार कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए ऐसा किया जाना अत्यावश्यक है। केवल 48.33% परिवारों को ही किसी अन्य विकास कार्यक्रम से भी सहायता मिली जबकि कई कार्यक्रम चल रहे हैं। यदि सभी सर्वेक्षित परिवारों को अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से भी लाभ मिल पाता तो उनमें से अधिकतर की आर्थिक स्थिति ही ज्यादा बेहतर होती। अतः सर्वेक्षित परिवारों के मामले में समन्वित ग्रामीण विकास की बात अब भी एक छलावा ही है। इससे यह भावना बलवती होती है कि हमारे देश में भूमि सुधारों को विकास नीति का अभिन्न हिस्सा नहीं माना जा सका है। साथ ही भूमि सुधार उपायों को नई दिशा दिए जाने और उन्हें गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का आधार बनाए जाने और समन्वित रूप से लागू किए जाने की आवश्यकता है। अतः यह सुझाव दिया जा सकता है कि जिला और ब्लाक स्तर के अधिकारियों तथा गैर अधिकारियों, खासकर पंचायती राज संस्थाओं के नेताओं को समन्वित ग्रामीण विकास के सिद्धांत से और बेहतर ढंग से अवगत समर्पित कराए जाने की आवश्यकता है साथ ही साथ जिला और ब्लाक स्तर पर एक ऐसी एजेंसी हो जो सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समन्वित करने का बेड़ा उठाए। बिना इसके न तो समन्वित ग्रामीण विकास हो पाएगा और न ही भूमि सुधारों को ठीक तरह लागू किया जा सकेगा।

अनुवाद: कमलकान्त पन्त,
14-192, मालवीय नगर,
नई दिल्ली-110017

माटी सोना

डा. वासुदेव

माटी-सोना! जगेसर महतो ने झुककर खेत से चुटकी भर, मिट्टी उठाई और सर से लगाते हुए बुदबुदाया, 'कभी मैंने भी सोचा था, माटी से सोना उगाऊंगा, पर मन की बात सपना बनकर रह गई। अब तो लगता है, अपनी जिन्दगी में मैं कुछ न कर सकूंगा'—'हे धरती मइया, मुझे माफ कर दो और आशीष दो कि जिस काम को मैं न कर सका, उसे मेरा बेटा कर दिखाए।' उन्होंने कई बार हाथ की मिट्टी को चूमा, फिर भरी आंखों से पूरे खेत को निहारा। गेहूं के हरे-भरे पौधे बड़ी मस्ती से झूम रहे थे, सरसों के पीले-पीले फूल खिल-खिला रहे थे, जैसे सब के सब जगेसर की असफलता पर अठ्ठहास कर रहे हों।

जब तक खेत जगेसर की जोत में था, उसमें फेंफनी जलती थी। कभी अच्छी फसल नहीं हुई। खाद, पानी, जोत, निराई, गुड़ाई सबका अभाव भला फसल अच्छी होती तो कैसे? पर, जब से खेत गिरवी गया है, उपज अच्छी हुई है। यही कारण है कि जब कभी जगेसर का ध्यान उस खेत की ओर दौड़ता है, वह अन्दर से रो उठता है। उसका कलेजा फटने लगता है।—'काश! कब मेरे हाथ पर दो पैसे होंगे ताकि मुझे भी उन्नत तरीकों से खेती करने का भाग्य मिल सकेगा? शहर में बेटे को यदि कहीं कोई ठिकाना मिल गया तो शायद मेरा सपना भी पूरा हो सकेगा।' उसका मन शहर की ओर दौड़ जाता है तथा मानस-पटल पर बेटे की धुंधली तस्वीर कौंधने लगती है। वह उज्ज्वल भविष्य के सपने में खो जाता है।

बड़ा दुःखदाई परिवार है जगेसर महतो का। एक बेटा, पर चार बेटियां। सबकी सब जवान। एक का हाथ भी पीला न कर सका है वह! बड़ी बेटी की शादी को लेकर वह विगत कई वर्षों से परेशान था, पर सारी परेशानी व्यर्थ सिद्ध हुई। सुन्दर सुशील कन्या के लिए कहीं कोई वर न मिल सका। फिर बेटे की पढ़ाई की समस्या सामने आ खड़ी हुई। जगेसर का मन बदल गया। सोचने लगा, 'यदि बेटे को नौकरी मिल गई तब सारा दुःख दूर हो जाएगा। दो साल की ही तो बात है। बी. ए. कर गया तो रोजी रोटी का जुगार ढूंढ़ ही लेगा।' उसने बेटी की ओर से मुंह फेर लिया और बेटे की पढ़ाई में तन-मन-धन से लग गया। हालांकि इस काम में उसके कई खेत बिक गए पर उसे इसकी चिंता नहीं थी।

इस बार शहर के एक प्राइवेट फर्म में इन्टरव्यू था। जगेसर ने खेत गिरवी रखकर रघुराज को रुपये दिए और शहर भेजा था। जाते समय जगेसर ने कहा था ''बेटा, घर की माली हालत तो तुमको मालूम ही है। अब खेती-बाड़ी से पेट भरने से रहा। शहर में कोई काम जरूर पकड़ लेना ताकि हाथ पर दो पैसे आते रहें। खाली हाथ वापस मत होना, नहीं तो गांव वाले हंसेंगे कि जमीन बेचकर बेटे को लिखाया-पढ़ाया, फिर भी नौकरी नहीं मिली। कुछ न कुछ जुगार जरूर बैठा लेना।'' जब बेटे को वापस होने में देर हो गई थी, तब वह मन ही मन सोच उठा था, 'लगता है, शहर में बेटे को कोई काम मिल गया, तभी तो वह वहां अटक गया है, नहीं तो आता नहीं।—रुपये जमा कर रहा होगा। एक ही बार आकर खेत छुड़ाएगा। हां, अब मेरे भी दिन फिरेंगे। हाथ पर दो पैसे होंगे, तब मैं भी फिर से किसान बन जाऊंगा। जमकर खेती करूंगा। फसल पकड़ा जाएगी तब गाड़ी में अनाज भी बेच सकूंगा। सारे अनाज खाने में थोड़े खर्च होंगे। बेचना तो पड़ेगा ही।'

जगेसर के मन में तरह-तरह के बतासे फूट रहे थे। वह इसी चिंतन में घर आ पहुंचा। दोपहर की धूप कड़ी हो चली थी। वह पसीना-पसीना हो चला था। इसलिए ओसारे पर ही बैठ गया और ताड़ के पंखे से हवा करने लगा। तब तक हाथ में हुक्का, चिलम थामे पत्नी भी आ गई। वह भी वहीं बैठ गई। बैठे-बैठे ही जगेसर ने सामने ब्रह्मस्थान की ओर देखा। वहां डाकिया खड़ा था जिसे गांव के कई लोग घेरे हुए थे। शायद एक चिट्ठी जगेसर के नाम भी थी। एक लड़का आकर उसे पत्र दे गया। जगेसर ने पत्र को बड़ी उत्सुकता से पढ़ा, पर पढ़ते-पढ़ते वह एकाएक उदास हो गया। पत्नी ने एक ही साथ कई प्रश्न दाग दिए। ''किसकी चिट्ठी है? रघुराज की तो नहीं? क्या लिखा है? नौकरी लगी....?''

जगेसर तो कुछ क्षण चुप लगाए रहा, फिर भारी मन से बोला, ''नौकरी नहीं मिली। गांव आ रहा है। आजकल में पहुंच जाएगा...।'' पत्नी स्तब्ध रह गई। एक खामोश उदासी ने सम्पूर्ण परिवेश को अपनी गिरफ्त में दबोच लिया। दोनों देर तक कुछ नहीं बोले। बस, सुदूर अतीत में खोए रहे।

जब से रघुराज की पढ़ाई शुरू हुई थी, जगेसर के हाथ पर तंगी ही तंगी बनी रही थी। न तो वह समय से हल-बैल जुटा

पाता था और न ही खेतों में खाद पानी ही दे पाता था। खेती हाथ से खिसकती गई। हालांकि रघुराज की रुचि गृहस्थी में थी, किन्तु जगेसर को यह पसंद नहीं था। जब कभी वह खेती-बाड़ी की बातें करता, वह टोक देता, "अब समय बदल गया बेटा। खेती से पूरी नहीं पड़ेगी। तुम पढ़ाई पर ध्यान दो। हाथ पर पैसे होंगे तब खेती-गृहस्थी भी संभल सकेगी। खेती तो अब जुआ हो गई है। आई तो आई, नहीं तो पूंजी भी गई समझो....।"

छटपटाकर रह जाता रघुराज। सबके खेत में फसल लहलहाती, पर इसके खेत कभी तो परती रह जाते, तो कभी फसल ही अच्छी नहीं होती। होती भी तो खाद-पानी के बगैर सूख जाती। इससे नतीजा यह हुआ कि दिनों-दिन घर में अनाज की कमी होती गई, फलतः अनाज खरीदना पड़ा, कर्ज बढ़ता गया और इस तरह जमीन बिकती गई। वह किसान से मजदूर बनता गया। वैसे खाने भर की जमीन तो अब भी थी। पर मेहनत हो तब तो। अब तो खेती-बाड़ी करने के लिए भी पैसे उसके पास नहीं थे। जगेसर भी थक चुका था। खाने-पीने के अभाव में समय से पहले ही उसकी उम्र लद गई थी। अब उसमें वह शक्ति कहां रह गई थी कि वह ज्येष्ठ-वैशाख की धूप में हल चलाता या सावन-भादो की मूसलाधार बारिस में खेत की मेड़ ठीक करता या पूस की ठंड में खेती की रखवाली करता? न तो उसमें वैसी शक्ति थी, न हिम्मत, न लगन और न उसके पास साधन ही थे। कहते हैं, आदमी जब मानसिक रूप से टूटने लगता है, तब उसके साथ उसका शारीरिक अधःपतन भी शुरू हो जाता है। जगेसर के साथ भी ऐसा ही हुआ था। वह मन से ही नहीं अपितु तन से भी थक चुका था। और यही कारण था कि जगह-जमीन के होते हुए भी वह किसान से मजदूर बनने की प्रक्रिया में जा पहुंचा था।

रघुराज जानता था कि उसके घर की जो माली हालत है और उसके घर पहुंचने पर वहां जो तबदीलीयां आएंगी, उसका मुकाबला करने की शक्ति उसमें नहीं है। फिर भी वह जरा-सा भी हतोत्साह नहीं हुआ था। न जाने शहर से चलते वक्त उसने क्या निर्णय लिया था। घर आने पर भी वह प्रसन्न चित ही था। खाना खाते समय मां ने जब कातरता से पूछा—"बेटा, अब तो तू शहर से भी लौट आया, अब कैसे क्या होगा? बाप तो थक गया। खेती-गृहस्थी भी चौपट हो गई। अब कैसे घर परिवार चलेगा? यहां तो पेट पर ही आफत है। फिर चार-चार जवान बेटियां बिन-ब्याही पड़ी हैं, इनका क्या होगा? मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता। कल तक तो तेरी ही आस लगाए बैठी थी, पर अब तो....।" कहती-कहती वह आंचल से मुंह ढंककर रोने लगी।

तीनों बहनें जो आंगन में बैठी अनाज साफ कर रही थीं, मां की बातों से उनका भी कलेजा फटने लगा था। तब तक जगेसर महतो भी आ गए थे। लेकिन वह भी उदास व चिंतित दिखाई दे रहे थे। लग रहा था जैसे पूरे घर-आंगन में अचानक करुणा, दुःख, दरिद्रता, निराशा आदि का सागर उभर आया है जिसमें परिवार के सारे लोग अब ऊब-डूब रहे हैं।

किन्तु मां की बातों से रघुराज के चेहरे पर जरा-सी सिकुड़न भी नहीं आई। जैसे मां की कातर, करुण बातों का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ हो। उसने बड़ी ही सहजता से जवाब दिया, "चिंता न करो मां, सब ठीक हो जाएगा। बस, भगवान पर भरोसा रखो और कर्म करती चलो। मैं भी इस घर का बड़ा लड़का हूं। परिवार का सारा बोझ अब मेरे कंधों पर ही है। अपने परिवार के सुख-दुःख का भागी अब मैं भी हूं। यदि मैं शहर से गांव वापस आया हूं तो कुछ सोच-समझ कर ही...।"

रघुराज की बातों से सबके सब निरूत्तर हो गए और मंत्र-मुग्ध-से दुःखद आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। लेकिन उसने आगे फिर कोई बात नहीं की। खाना खाकर सीधे अपने कमरे में चला आया। कुछ क्षण तक कागज-पत्तर ठीक करता रहा। जब उसने देखा कि स्नान-पूजा कर पिताजी ने भी भोजन कर लिया है, तब वह तैयार होकर उनके करीब आया। वह ओसारे पर बैठे खैनी मल रहे थे। मां भी पास ही बैठी कपड़े में पेबन्द लगा रही थी।

आते ही रघुराज ने कहा, "पिताजी आपको बैंक चलना होगा।"

क्यों रे? बैंक क्यों? क्या रुपये जमा करोगे? कितने रुपये कमाकर लाये हो? आशंका और आशा के भंवर में फंसा जगेसर ऐसा झल्लाया कि उसकी बातों से कुछ क्षण के लिए रघुराज भी तिलमिला गया। फिर भी उसने संभलते हुए कहा, 'बैंक से रुपये कर्ज लेने हैं।'

रघुराज की बातों से जगेसर के शरीर में जैसे आग लग गई हो। फिर भी उसने क्रोध के घूंट को अंदर ही अंदर पीते हुए, पूछा—'रुपये कर्ज लेने हैं, पर क्यों?'

"ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत सरकार की ओर से कृषि-कार्य के लिए रियायती दर पर ऋण की व्यवस्था की गई है। मैं चाहता हूं कि बैंक से ऋण लेकर खेती का सामान खरीद लूं और नये सिरे से कृषि-कार्य में...।"

रघुराज पूरी बातें कह भी पाता कि जगेसर महतो बीच में ही भभक उठे—"क्या कहा रे?—बैंक से लोन लूं? जो जमीन बची है, उसे भी बैंक को गिरवी रख दूं? फिर इन चार-चार जवान

टियों का क्या होगा? तुम तो कहीं भी पेट भर लोगे, पर हम लोग क्या हवा खाकर रहेंगे? क्या इसी सबके लिए जगह-जमीन बेचकर इतना पढ़ाया-लिखाया था कि एक दिन अपने ही घर में सेंध लगा दो?—खबरदार जो फिर कभी ऐसी बातें की तो....।" वह कुछ क्षण चुप लगा कर गुर्राते हुए रघुराज को देखते रहे, फिर आगे कहना शुरू किया,—"जमीन बंधक रखकर शहर भेजा था, नौकरी के लिए, जब तक जेब गरम रही, शहर में चांदी काटते रहे, पर जैसे ही हाथ खाली हुआ, बैरंग लौट आए। अपना पेट भी न पाल सके। और अब आये हैं बैंक से लोन लेने, ताकि कल जब कर्ज के पैसे अदा न कर सके तो मेरी जमीन नीलाम हो जाए।" जगेसर महतो उबल पड़े थे। वृद्धावस्था, जर्जर तन-मन, क्रोध में कांप रहे थे वह।

हालांकि उनकी उस क्रोधाग्नि की दाह को बखूबी भांप रहा था रघुराज, फिर भी वह जरा-सा भी नहीं घबराया। उसने बड़े ही शांत भाव से समझाने के अभिप्राय से कहा,-"आप मेरी बातों को समझने की कोशिश कीजिए पिताजी। अपनी जमीन और बहनों से मुझे भी उतना ही लगाव है जितना कि आपको है। आपके बाद ये सारी जवाबदेही मेरे ही मत्थे आएंगी। न तो मैं जमीन बर्बाद करने के पक्ष में हूं और न ही बहनों का भविष्य ही। रह गई शहर में नौकरी की बात, तो आपने शहर के बारे में केवल सुना है। किन्तु मैंने शहर को बहुत करीब से देखा है, उसे भोगा है, उसे जिया है। न जाने क्यों आज भी तमाम ग्रामीण युवा-पीढ़ी में गांव छोड़कर शहर जाने की होड़ लगी है। गांव से उनका पलायन हो रहा है, पर शहर में उनको मिलता क्या है, खाक? मैं अब कभी रोटी के लिए शहर का द्वार नहीं खटखटाऊंगा। कभी नहीं! मेरे पास जमीन है। खाने-कमाने भर जमीन! मैंने निर्णय कर लिया है कि मैं अब गांव में ही रहूंगा और धरती माता की सेवा करूंगा। इस काम के लिए मुझे आपकी मदद की जरूरत है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरी मदद कीजिए...।"

बेटे के इस संक्षिप्त भाषण में न जाने कैसी शालीनता थी कि बाप के हृदय की उष्मा भी धीरे-धीरे ठंडी होने लगी थी। फिर भी उनमें आक्रोश तो था ही। उन्होंने बड़े ही व्यंग्यात्मक लहजे में कहा, "तो तुम अब कालेज का नालेज लेकर किसानी करने चले हो? अरे मूर्ख, तुमको पता है कि गांव के बड़े-बड़े किसान अब खेती-गृहस्थी से हाथ धोकर शहर में (बिजीनेस) व्यवसाय कर रहे हैं। अरे अब खेती में रखा क्या है? खाद-पानी, मेहनत मजदूरी जोड़कर देखोगे तो घर का आटा भी गीला होता नजर आएगा। मेरा कहना मानो तो जाओ शहर में और दो पैसे का रोजगार ढूंढो। नहीं तो भूखे मर जाओगे। तुम मरोगे, साथ में हम लोगों को भी मारोगे। अब यह धरती रत्नगर्भा नहीं रही रे...।"

"ऐसा कहकर धरती माता का अपमान न करो बापू।" रघुराज बीच में ही चीख उठा, "यह धरती पहले भी रत्नगर्भा थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। अनादिकाल से मां वसुन्धरा अपनी संतानों का भरण-पोषण करती आ रही है और भविष्य में भी न जाने कितने हजारों लाखों वर्षों तक करती रहेगी। यह अन्नपूर्णा है। हम जितनी ही इसकी सेवा करेंगे, उतना ही मेवा मिलेगा। इस धरती माता की सेवा करने का मुझे बस, एक मौका दीजिए पिताजी। मैं अपनी मिट्टी से सोना उगाऊंगा, सोना...हां, माटी-सोना....!!"

रघुराज के कथन में इतना आत्म-विश्वास था कि उसके स्पर्श-मात्र से ही जगेसर महतो की सारी धारणाएं चकनाचूर हो गई। पहली बार उन्हें आत्म-बोध हुआ कि उनके खून-पसीना की कमाई का उपयोग बेटे ने सचमुच अपनी पढ़ाई में किया है। वह मन ही मन सोचने लगे, पढ़ा-लिखा लड़का है, सारी बातों को करीने से समझता है। वैसे भी अब बालिग हो चला है। सब कुछ तो अब इसी का है। डूबेगा भी तो इसी का, मेरा क्या जाएगा। हम दोनों प्राणी तो अब पके फल हैं। कब चू जाएं, नहीं कहा जा सकता। क्या पता कहीं खेती में मन लग गया और फसल पकड़ा गई तो हमारे दिन ही बदल जाएंगे....।" वह चुपचाप बैंक की राह चल पड़े। आगे-आगे जगेसर, पीछे-पीछे रघुराज, बड़ी आशा और उम्मीद से उनका जाना मां-बेटी देर तक देखती रहीं।

रघुराज ने बैंक से मात्र बारह हजार रुपये कर्ज पर लिए। उन रुपयों में से एक जोड़ी बैल खरीदा, पानी पटाने वाली मशीन, फिर खाद-बीज। सामने रबी की खेती थी। उसने जमकर खेती की। कुछ अपने आप, कुछ बटाई पर। पूरी मेहनत से। समय पर खाद-पानी दिए। मानसून ने भी साथ दिया। फसल अच्छी हुई। जगेसर महतो का घर अनाज से भर गया। फिर तो उसके दिन ही फिर गए। अब रघुराज ही नहीं, अपितु जगेसर महतो भी माटी से सोना उगाने का रहस्य समझ गया।

करम टोली,
कार्यालय मंडल अभियंता दूरभाष
रांची-834008 (बिहार)

भूमि सुधारः कितनी प्रगति?

विनोद बाली

भारत में भूमि सुधार के प्रमुख उद्देश्य ये रहे हैं कि जमीन के स्वामित्व के पुराने सामंती और शोषणकारी ढांचे को बदला जाये, किसान की खेत-भूमि का स्वामित्व सुरक्षित रहे, लगान आदि की व्यवस्था को तर्कसंगत बनाया जाये ताकि बटाइदारों का शोषण न हो सके और जमीन का पुनर्वितरण करने के उपाय किये जायें जिससे निर्धन भूमिहीन कृषक को जमीन मिले, जिस पर काम करके वह अपना सामाजिक व आर्थिक स्तर सुधार सके। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अनेक उपाय किये जा चुके हैं। लेकिन इनसे आशा अनुरूप सफलता नहीं मिल पाई है। यही स्थिति छठे दशाक में थी और आज नवें दशक की दहलीज पर खड़े समय में भी है। सन् 1963 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था—"बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने समय से भूमि सुधार के तमाम प्रयत्नों के बावजूद अनेक स्थानों पर लगानदारों को अभी तक सुरक्षा नहीं मिल पाई है।" छठे दशक के अंत में और सातवें दशक के आरंभ में देश में किसानों में जो असंतोष उभरा था उससे यह स्पष्ट था कि भूमि सुधार उपाय पूरी तरह सफल नहीं हुए। इसी के फलस्वरूप सन् 1972 में भूमि सुधारों के बारे में राष्ट्रीय निर्देश तैयार किये गये तथा देश भर में हदबंदी कानून का दूसरा दौर आरंभ किया गया।

लेकिन इन नये कानूनों की प्रगति भी संतोषजनक नहीं रही। इसका प्रमाण 1976 में श्रीमती गांधी की मुख्यमंत्रियों की एक बैठक में इस टिप्पणी से मिल जाता है—"भूमि सुधारों का हमारी आर्थिक व सामाजिक प्रगति में आधारभूत महत्व है...फिर भी इनके परिपालन में हिचक और सुस्ती दिखलायी पड़ती है। मेरे विचार में यह स्थिति इस कारण से है कि कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं जो निहित स्वार्थ के कारण भूमि सुधार नहीं होने देना चाहते। दूसरा यह भी कारण हो सकता है कि लोगों को भूमि सुधारों के महत्व का आम तौर पर बोध नहीं है।"

वर्ष 1972 में कृषि भूमि की हदबंदी के बारे मुख्यमंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें ये प्रमुख निष्कर्ष निकाले गये थे:—

(क) जिस सिंचित भूमि में वर्ष में कम से कम दो बार उपज मिलती है उसकी अधिकतम स्वामित्व सीमा 10 से 18 एकड़ के बीच रखी जाए।

(ख) इससे कम अच्छी भूमि की अधिकतम सीमा अधिक रखी जा सकती है परन्तु यह 54 एकड़ से ऊपर नहीं रखी जाए।

(ग) यह अधिकतम सीमा पांच सदस्यों के परिवार को इकाई मानकर लागू की जाए। पर अगर परिवार बड़ा है तो प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए भूमि की छूट हो, मगर एक परिवार के लिये कुल भूमि अधिकतम सीमा के दोगुने से अधिक नहीं होनी चाहिये।

(घ) यह सीमा इलायची, कोको, काफी, चाय, रबड़ बागान पर लागू न की जाये।

(ङ.) निजी ट्रस्टों को सीमा से अधिक भूमि रखने की छूट न दी जाये। लेकिन धार्मिक, सार्वजनिक शिक्षा संस्थानों के लिये छूट दी जा सकती है।

(च) फालतू भूमि के वितरण में भूमिहीन खेत मजदूरों, विशेषकर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लोगों को प्राथमिकता दी जाये।

इन भूमि सीमा मार्ग-निर्देशों से भूमिहीनों में फालतू जमीन का वितरण निश्चय ही हो सका है और पट्टेदारी सुनिश्चित होने से बटाईदारों को खेत और उपज दोनों में सुधार लाने के लिये प्रेरणा मिली है। इसके बावजूद यह कहा जा रहा है कि भूमि सुधारों को अधिक गंभीरता से लागू करने की आवश्यकता है।

राजस्व सचिवों के सम्मेलन के बाद दिसंबर 1988 में हुए राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में भूमि सुधार कार्यान्वयन की समीक्षा की गई थी। इसमें आठवीं योजना के दौरान भूमि सुधार के मामले में अधिक ध्यान देने योग्य बातों पर भी विचार किया गया था। सम्मेलन में कुछ प्रमुख कामों पर विशेष ध्यान देने का समर्थन किया गया। जबानी या अनौपचारिक पट्टेदारों तथा बटाईदारों का पता लगाकर उनका रिकार्ड तैयार करने, जनजातीय लोगों से छीन ली गई भूमि का पता लगाने और इसे उन लोगों को वापस दिलाने के उपाय करने, फालतू आबंटित जमीन पर अधिकार की जांच कराने, जहां आवश्यक समझा जाये कब्जा बहाल कराने, खेती के लिये विशेष सहायता के

उपाय करने तथा स्त्रियों को भूमि आबंटन के विशेष लक्ष्य निर्धारित करने जैसे कार्य इनमें शामिल थे। सम्मेलन में सर्वसम्मति से सिफारिश की गई कि राज्यों को भूमि रिकार्ड प्रबंध में सुधार लाने के लिये पर्याप्त केन्द्रीय सहायता दी जाये। सम्मेलन में इस बात पर सहमति थी कि राजस्व प्रशासन व भूमि रिकार्ड व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाये। वास्तव में भूमि के बारे में आंकड़े व कागज-पत्र अपूर्ण तथा बिखरे होने के कारण न केवल वास्तविक स्थिति का पता लग पाता बल्कि असली स्वामित्व का निर्धारण करना भी कठिन हो जाता है। भूमि सुधार में यह कमी बड़ी बाधा बनी है। केन्द्र ने राज्यों से कहा है कि वे भूमि संबंधी रिकार्ड को पूरा करने का काम प्राथमिकता से करें। इसके लिये वर्ष 1985-86 को भूमि रिकार्ड वर्ष माना गया था। भूमि सीमा कानून के तहत मिली फालतू जमीन के आबंटियों को पूरा फायदा दिलाने के लिये यह आवश्यक है कि भूमि अभिलेख पूरे और स्पष्ट हों क्योंकि आबंटी को जमीन के साथ उसे ठीक करके उपजाऊ बनाने और लाभकारी उत्पादन के लिये कृषि ऋण की नितांत आवश्यकता होती है जो कि रिकार्ड के आधार पर ही उसे मिल पाता है। उसे फसल बीमा आदि कार्यक्रमों के लाभ भी तभी मिल सकते हैं जब उसे मिली जमीन के दस्तावेज ठीक हों। इस प्रकार इसका पूरा दायित्व राजस्व प्रशासन पर है, जिसे चुस्त-दुरुस्त करने की आवश्यकता है। पिछले वर्ष राजस्व प्रशासन के ढांचे में सुधार लाने और भूमि रिकार्डों को पूरा करने पर विशेष ध्यान दिया गया। इस संबंध में पहली बार निपटान आयुक्तों, निदेशकों, भूमि अभिलेख व राजस्व सचिवों का सम्मेलन कराया गया। इसमें कहा गया कि राजस्व प्रशासन व सर्वेक्षण तथा निपटान संगठनों को मजबूत बनाया जाये और भूमि अभिलेखों को तैयार करने और उनकी देखभाल करने में नई तकनीकों का उपयोग किया जाये। नवीन तकनीक लागू करने के लिए काम आरंभ भी हो चुका है। मध्य प्रदेश, गुजरात, असम, उड़ीसा, बिहार, राजस्थान व आंध्र प्रदेश के एक-एक जिले में भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिये केन्द्रीय सहायता से सात प्रायोगिक अनुसंधान परियोजनाएं चलाई गई हैं। एक राष्ट्रीय संचालन समिति इनका मूल्यांकन करेगी तथा आवश्यक दिशानिर्देश देगी।

अभी तक जो अनेक राष्ट्रीय सर्वेक्षण हुए हैं, उनके अनुसार सीमा से फालतू भूमि प्राप्त होने का जो अनुमान था वह वास्तव में फालतू घोषित भूमि से कहीं अधिक है। इस निष्कर्ष से यह बात स्पष्ट होती है कि बड़े तथा प्रभाव वाले भूमि मालिक सीमा कानूनों से येन-केन प्रकारेण बच निकलते हैं। फालतू घोषित जमीन खेती वाली भूमि के दो प्रतिशत से भी कम है। इसके अलावा यह घोषित फालतू भूमि मुकदमेबाजी के कारण पूरी तरह कब्जे में नहीं ली जाती। 1980-81 की कृषि गणना के अनुसार अनुमान लगाया गया कि 59 लाख 50 हजार हैक्टेयर फालतू जमीन निकली है। वैसे अगर शुष्क भूमि की अधिकतम सीमा 12 हैक्टेयर मानें व बागान तथा बगीचों को छोड़ दें तो 98 लाख 40 हजार हैक्टेयर जमीन फालतू निकलती है। फालतू जमीन के वितरण तथा सीमा पुश्तैनी वितरण के कारण 1970-80 के दशक में छोटी व सीमांतक जोतों की संख्या बढ़ी है। लेकिन यह भी सच है कि दस हैक्टेयर व उससे अधिक की बड़ी जोतों की संख्या अब भी काफी अधिक है और कुल जोत संख्या का करीब ढाई प्रतिशत है और खेती योग्य कुल क्षेत्र का करीब तेईस प्रतिशत क्षेत्र इनके अंतर्गत है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कृषि भूमि के स्वरूप में अब भी बहुत असमानता है। सत्तर प्रतिशत से अधिक भूमि एक चौथाई से भी कम ग्रामीण परिवारों के पास है और शेष तीस प्रतिशत भूमि एक तिहाई ग्रामीण परिवारों के स्वामित्व में है। शेष ग्रामीण भूमिहीन हैं व खेत मजदूर हैं। सीमा कानूनों के अंतर्गत सरकारी कब्जे में पिछले वर्ष तक 73.48 लाख एकड़ जमीन ली जा चुकी थी। इसमें से करीब 45 लाख एकड़ जमीन भूमिहीन किसानों में बांट दी गयी। करीब साढ़े 28 लाख एकड़ फालतू जमीन आबंटित होनी बाकी थी। आबंटित भूमि से लाभार्थियों की कुल संख्या करीब साढ़े 41 लाख बतायी गयी है। इनमें से 14.63 लाख कृषक अनुसूचित जातियों के तथा 5.70 लाख अनुसूचित जनजातियों के थे। आंकड़ों से स्पष्ट है कि फालतू जमीन के वितरण का काम धीमा रहा है। इसके कारण ये हैं कि फालतू घोषित काफी जमीन मालिकों द्वारा अदालतों में जाने के कारण मुकदमों में फंस गयी है। फालतू घोषित प्राप्त जमीन का काफी भाग पुनर्वितरण के लिये उपयुक्त नहीं है। कुछ जमीन को सार्वजनिक कार्यों के लिये सुरक्षित घोषित कर दिया गया है। वर्ष 1988 में हुये राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में कहा गया कि भूमि के पुनः वितरण के लिये भूमि की उपलब्धता बढ़ाना आवश्यक है और इसके लिये विधायी उपायों को अधिक कड़ा बनाना होगा, सीमा से छूट की समीक्षा करनी पड़ेगी और परिवार इकाई की परिभाषा फिर निर्धारित करनी होगी। मुकदमों में फंसी जमीन को छुड़ाने के लिये विचाराधीन मामलों को जल्दी निपटाने के विशेष उपाय भी करने होंगे।

फालतू घोषित भूमि में काफी भूमि घटिया है और खेती के उपयुक्त नहीं है। जिन लोगों को यह दी जाती है वे इतने गरीब हैं कि इसे अपने बलबूते पर ठीक नहीं कर सकते। ऋण प्राप्त करने में उन्हें बहुत कठिनाई होती है। दरअसल, भूमि सुधार कानूनों में कृषि विकास और ग्रामीण विकास के बीच संबंधों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी। भूमि सुधारों को कृषि क्षेत्र की उत्पादक क्षमता में सुधार लाने का प्रयास कम माना गया और

इसे कमजोर वर्ग की समस्याओं को दूर करके उनकी स्थिति सुधारने के विशेष प्रयास के रूप में अधिक रेखांकित किया गया। राज्यों में भूमि सुधार विषय की जिम्मेदारी कृषि विभाग पर नहीं बल्कि राजस्व विभाग पर डाली गयी। परिणाम यह हुआ कि भूमिहीन किसानों को जमीन तो मिल गई परन्तु उन्हें खाद, बीज जैसी आवश्यक चीजें और अन्य सेवायें दिलाने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप कृषि उत्पादन में आशा के अनुरूप वृद्धि नहीं हुई। इस विसंगति को ठीक करने के लिये 1975-76 में एक केन्द्रीय योजना आरंभ की गयी। लेकिन इसके अंतर्गत इतनी कम धनराशि दी गयी कि इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। आबंटित भूमि की उत्पादक क्षमता का विकास करने के लिये निवेश की काफी अधिक आवश्यकता थी। एक केन्द्रीय कार्यदल ने इस संबंध में कहा था, "भूमि सुधार की लागत 700 रुपये प्रति हैक्टेयर से कम नहीं बैठेगी जबकि केन्द्रीय योजना के अंतर्गत केवल 200 रुपये प्रति एकड़ की ही सहायता उपलब्ध है।" यह राशि बाद में बढ़ाकर 400 रुपये प्रति एकड़ तथा फिर 1000 रुपये कर दी गयी। बढ़ती महंगाई के कारण वास्तविक वृद्धि मामूली रही। इस कम राशि से भी आबंटियों को बहुत कम सहायता मिली। अब घटिया भूमि विकास पर सहायता के अंतर्गत 2500 रुपये प्रति हैक्टेयर दिए जा रहे हैं। पिछले वित्त वर्ष से इस योजना का लाभ अनुसूचित जातियों व जनजातियों के भूदान तथा सरकारी परती भूमि के आबंटियों को भी दिया जा रहा है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में जनजातीय आबादी के शोषण के अलावा इनमें तेजी से फैले असंतोष का एक बड़ा कारण यह है कि इनकी जमीन गैर-आदिवासी लोगों द्वारा छीने जाने की चिंताजनक प्रक्रिया पर पूरा अंकुश नहीं लग पाया है। जो प्रशासन इसे रोकने के उपाय करता है उसी के कुछ सदस्य-अधिकारी, कर्मचारी वर्ग इन उपायों को विफल करने में मिलीभगत बनाये रहते हैं। इस सिलसिले में अधिक कड़े उपायों की तत्काल आवश्यकता है क्योंकि बिहार, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में इस मामले में स्थिति काफी गंभीर रूप धारण कर चुकी है। जनजातीय भूमि का गैर-आदिवासी लोगों को हस्तांतरण रोकने के लिये अब अधिक कड़े कानूनी प्रावधानों पर जल्दी विचार करना होगा तथा ऐसी भूमि जनजातीय लोगों को वापस दिलाने के अधिक प्रभावी प्रशासकीय व न्यायिक प्रबंध तत्काल करने होंगे। इनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक अधिकारों व उनके हितों की प्रभावी सुरक्षा को प्राथमिकता देनी होगी।

एच 204, डी. डी. ए. फ्लैट्स (एम. आई. जी.)
राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110018

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें:—

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना की प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

मध्यप्रदेश में भूमि सुधारों की प्रगति एवं मूल्यांकन

डा. हेमचंद जैन

भूमि सुधारों को व्यापक अर्थ में ग्रामीण सुधार अथवा ग्रामीण संस्थागत सुधार के बराबर समझा जाता है। इन्हें सीमित अर्थ में सामान्यतः भू-धारण, विशेषकर भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण में परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है। कतिपय देशों में भूमि सुधार के अन्तर्गत भू-धारण संस्थाओं अथवा कृषि संगठन में सुधारों को समझा जाता है। भूमि सुधार का व्यापक अर्थ में न केवल खेतिहर लोगों की जिन्दगी को प्रभावित करने वाले सामाजिक परिवर्तनों को भी शामिल किया जाता है वरन् खेतिहर देशों में खेती को प्रभावित करने वाले आर्थिक परिवर्तन को भी शामिल किया जाता है। खेती संबंधी सुधार के अन्तर्गत बहुत ही स्थूल एवं व्यापक सुधारों को सम्मिलित किया जाता है, जिनका संबंध न केवल भू-धारण परिवर्तनों में होता है, वरन् कृषि साख, सम्पूर्ति, विपणन, प्रसार और अनुसंधान संबंधी सेवाओं से भी है। ऐसे सभी कार्यक्रमों अथवा उपायों को कृषिगत सुधारों का अंग माना जाता है, जिनसे कृषि संबंधी ढांचे और खेती में कार्यरत सभी वर्गों के लोगों की, उनके भूमि से जो वैधानिक संबंध हो, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधारों को लक्ष्य मानकर कार्यान्वित किया जाता है। इन सुधारों के कारण न केवल भू-स्वामित्व का अधिक समान वितरण होता है, वरन् असामी/बटाईदार किसानों की स्थिति में भी सुधार होता है। अतएव इन सुधारों के परिणामस्वरूप कृषि संबंधी ढांचे में दोषों से उत्पन्न आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए रुकावटों को हटा दिया जाता है।

कृषि संबंधी सुधारों को कृषि गत ढांचे में मौजूद दोषों को दूर करने के लिए लागू करना जरूरी है। भारत सरीखे कृषि प्रधान देशों में ऐसे कृषि ढांचे को विकसित करना जरूरी है, जिससे कृषि उत्पादन तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के पोषण के अनुकूल हो, उद्योगों के कच्चेमाल की पूर्ति कर सके, ग्रामीण क्षेत्रों में रहन-सहन का स्तर उठा सके और खेती आर्थिक एवं सामाजिक विकास में अपना उचित योगदान प्रदान कर सके।

भारत में सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास की समस्या के निदान में भूमि सुधार कार्यक्रम को शुरू से ही महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। इनके अन्तर्गत भूमिधारण स्वत्व के मध्यस्थों का उन्मूलन, भू-धारण सुधारों (लगान का नियमन, असामी किसानों के लिए भू-स्वत्व का सुरक्षण और स्वामित्व प्रदाय), भू-जोत परिसीमन (भविष्य में अधिप्राप्ति एवं मौजूदा जोत) और कृषि संबंधी पुनर्गठन (भू-जोतों की चकबंदी और अन्तर्विभाजन एवं विखण्डन पर रोक, भू-प्रबंध कार्यप्रणाली, सहकारी कृषि का विकास और सहकारी ग्राम प्रबंध का विकास)।

देश की पंचवर्षीय योजनाओं के प्रतिवेदनों में भू-नीति के संबंध में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि भूमि का स्वामी वह होगा, जो भूमि को जोतेगा। किसानों के शोषण पर आधारित भूमि व्यवस्थाओं को क्रमशः बदलकर ऐसी व्यवस्था निर्मित की जाये, जिससे भूमि जोतने वाले को अपने श्रम का अधिकतम प्रतिफल प्राप्त हो सके। देश में सातवीं पंचवर्षीय योजना से भूमि सुधार नीति में निश्चित रूप से अनुकूल परिवर्तन लाया गया है। अभी तक भूमि सुधार उपायों को अलग किया हुआ मानकर क्रियान्वित किया गया था। इन्हें ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम से न संबंधित किया गया और न विकास गतिविधि की मुख्य धारा में लाया गया था। सातवीं योजना के प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम द्वारा उन लोगों को आय के साधन जुटाना है, जिनके पास ये साधन या तो बहुत ही कम हैं या फिर बिल्कुल नहीं हैं। अतः पुनर्वितरण, भूमि सुधार और अनौपचारिक पट्टेदारों को पट्टे की सुरक्षा को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के साथ सीधे जोड़ना होगा। इसी योजना में आगे यह दोहराया गया है "गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और कृषि के आधुनिकीकरण तथा उत्पादकता बढ़ाने में भूमि सुधारों की अहम् भूमिका है।" संक्षेप में सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधारों को ग्रामीण विकास की मुख्य धारा का अंग और इन्हें गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में एक केन्द्रीय कार्य माना गया।

मध्यप्रदेश में भूमि सुधार कार्यक्रम की शुरुआत पहली अप्रैल 1951 से होती है, जब विधान के द्वारा राज्य और भूमि जोतने वालों के बीच के मध्यस्थों का उन्मूलन किया गया। मध्यस्थों से भू-सम्पत्ति के अधिकारों को राज्य ने वापिस ले लिया और बदले में संविधान की गारंटी के अनुसार मुआवजे का भुगतान भी किया गया। एक अनुमान के अनुसार प्रदेश ने 7 वर्षों के अंदर 22.10 करोड़ रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में दिये।

यद्यपि देश के अधिकांश हिस्सों में मध्यस्थ भू-धारण स्वत्व का उन्मूलन कर दिया गया है और 2 करोड़ से अधिक किसानों को राज्य के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में लाया गया है, लेकिन अभी भी देश के आधे से अधिक क्षेत्र में भू-धारण स्वत्व की मध्यस्थ व्यवस्था का उन्मूलन करना शेष है। इस लिहाज से प्रदेश ने 1956 के पूर्व ही सभी भूमि धारण स्वत्व के मध्यस्थों का उन्मूलन करके देश के कतिपय चुनिंदा राज्यों में स्थान प्राप्त किया, जबकि देश के 3/5 भाग में मौजूद इस प्रकार की भूमि व्यवस्था को मार्च 1990 तक उन्मूलन करने की रणनीति बनाई गई है। प्रदेश में मध्यस्थों के उन्मूलन संबंधी कोई भी कार्य लम्बित नहीं है। भूमि पर मध्यस्थों के स्वत्व के उन्मूलन के फलस्वरूप प्रदेश में मध्यस्थों के स्वामित्व के अन्तर्गत परिसम्पत्तियां जैसे तालाब एवं जल के अन्य स्रोत, सभी बेकार भूमि, सामुदायिक भूमि, गांव के वन, खदानों एवं खनिज इत्यादि पर राज्य का अधिकार हो गया। असामी किसानों के द्वारा जोती गई भूमि भी राज्य के स्वामित्व के अंतर्गत आ गई। मध्यस्थों के उन्मूलन से निस्संदेह भू-राजस्व प्राप्ति में सकल वृद्धि हुई, परन्तु भू-राजस्व उगाही के व्यय में भी वृद्धि हुई। सरकार पर यह भार भी आ गया कि उसे ही भू-धारण स्वत्व में जोत के अधिकार का निर्धारण करना है। इससे मुकदमेबाजी में वृद्धि हुई तथा बेईमानी और अधःपतन की प्रवृत्ति बढ़ी तथा राजस्व अधिकारियों के द्वारा अनुचित उपायों से आमदनी बढ़ाने को प्रोत्साहन मिला। परंतु इस भूमि सुधार का उज्ज्वल पहलु भी है। इस कानून के कारण किसान लोगों को मध्यस्थों के दमन चक्र से बाहर निकाल लिया गया और सदैव के लिए बचा लिया गया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था से हमेशा के लिए बेगार व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। पूर्व में असामी किसानों को अपनी जमीन बेचने के लिए मध्यस्थों को कुछ भुगतान करना पड़ता था, इस कानून के लागू होने के बाद यह प्रथा समाप्त हो गई और असामी किसान को अपनी भूमि बेचने का बिना किसी भुगतान के अधिकार प्राप्त हो गया। मध्यस्थों की काश्त भूमि में भारी कटौती हो गई। बेकार और घास रकबा पर सरकार का अधिकार हो गया। असामी काश्तकारों को स्वामित्व अधिकार प्रदान करने के कारण, उन्होंने कृषि उत्पादन बढ़ाने में स्वाभाविता रुचि लेना प्रारंभ कर दिया। राज्य और असामी कृषकों का संबंध प्रत्यक्ष हो गया।

भू-मध्यस्थों के उन्मूलन के बाद प्रदेश में भू-राजस्व संहिता अधिनियम के द्वारा भू-स्वत्व की एकरूपता, असामी कृषकों को निरंकुश बेदखली से बचाव, अत्यधिक लगान और उन्हें भूमिस्वामी का अधिकार प्रदान करना इत्यादि भूमि सुधार के रूपों को शामिल किया गया। तीन श्रेणियों के लोग राज्य से प्रत्यक्ष रूप से भूमि धारण करते हैं। भू-स्वत्व धारकों में भूमिस्वामी को संहिता में केवल मान्यता प्रदान की गई, जिसे भूमि पर स्थायी, पैतृक और हस्तान्तरण अधिकार प्रदाय किए गए। इसके अतिरिक्त शासकीय पट्टेदारों और सेवाभूमि धारकों को भी राज्य से भूमि धारण होती है। भूमि स्वामी के अन्तर्गत कोई व्यक्ति भू-धारण करता है, उसे कोड में मौरूसी असामी के रूप में वर्णित किया है। भूमि स्वामी लगातार तीन वर्ष के बाद एक वर्ष के लिए पट्टे पर जमीन कानूनन दे सकता है। अशक्तता की स्थिति में पट्टे पर जमीन देने के लिए कानून के द्वारा कोई रोक नहीं है। असामी/अर्ध असामी कृषकों के द्वारा सिंचित भूमि के लिए भू-राजस्व का चार गुणित, बांध भूमि के लिए तीन गुणित और अन्य प्रकार की भूमि के लिए दो गुणित लगान का भुगतान करने का प्रावधान संहिता में किया गया। संक्षेप में, भू-स्वत्व धारण सुधारों का अंतिम उद्देश्य यह है कि भूमि जोतने वाले भूमि के स्वामी बन सकें। इस संबंध में अनेक राज्यों में पट्टेदार असामी कृषकों, जिनकी संख्या 97.10 लाख थी, को 67.87 लाख हैक्टेयर भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्रदान किये गए। प्रदेश में कृषि संगणना के परिणामों के आधार पर शुद्ध और अंशतः पट्टेदारी का विस्तार बहुत ही नगण्य है। वर्ष 1980-81 में प्रदेश की कुल कार्यशील जोतों में से अंशतः भाड़े/पट्टे की जोतों का प्रतिशत 0.90 था तथा पूर्णतया बटाई के अंतर्गत 0.99 प्रतिशत जोतें थीं। इन दोनों प्रकार की जोतों के अन्तर्गत कुल कार्यशील जोतों के क्षेत्र का क्रमशः 0.49 और 0.57 प्रतिशत क्षेत्र अंशतः और पूर्णतया भाड़े और पट्टे के अन्तर्गत था। अधिनियम के अन्तर्गत सामान्यतः पट्टेदारी/बटाईदारी प्रथा गैर कानूनी है, लेकिन प्रदेश में भी देश के अन्य राज्यों के समान औपचारिक अथवा छिपे रूप में पट्टेदारी प्रथा विद्यमान है और इसके फैलाव/सीमा का पता लगाना जरूरी है, जिससे इसे रोका जा सके और जरूरतमंद गरीब भूमिहीन किसानों के वितरण के लिए ज्यादा से ज्यादा भूमि उपलब्ध हो सके। असामी किसानों को, जो भूमि भूमिस्वामी से बटाई अथवा अधियां में प्राप्त करते हैं, रिकार्ड में दर्ज करने का प्रावधान किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत खेती की कड़ी परिभाषा के द्वारा भी अनौपचारिक पट्टेदारी की प्रथा पर बहुत हद तक रोक लग सकती है। वैधानिक प्रावधानों के द्वारा असरदार ढंग से भू-धारण की बटाई प्रथा पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस हेतु राजनैतिक इच्छा शक्ति का होना बहुत जरूरी है।

वर्ष 1972 के राष्ट्रीय मार्गदर्शी निर्देशों के अनुसार प्रदेश में भू-जोत का परिसीमन उसी स्तर पर किया गया, जिस प्रकार सुझाव दिया गया था। प्रदेश में भू-जोत परिसीमन के लागू होने के बाद अतिरिक्त भूमि के स्वामित्व एवं वितरण की स्थिति मार्च 1988 तक निम्नानुसार है:

1.	अतिरिक्त घोषित क्षेत्र	– 122615.53 हैक्टेयर = 100%
2.	क्षेत्र जिस पर कब्जा लिया	– 85925.54 हैक्टेयर = 70.08%
3.	क्षेत्र जिसे बांटा गया	– 58688.19 हैक्टेयर = 47.86%
4.	अतिरिक्त घोषित क्षेत्र परन्तु बांटा नहीं गया	– 36689.99 हैक्टेयर = 29.92%
5.	मुकदमेबाजी में फंसा क्षेत्र	– 37243.22 हैक्टेयर = 30.37%
6.	क्षेत्र जो सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये सुरक्षित	– 3986.50 हैक्टेयर = 3.25%
7.	कृषि के लिए अयोग्य क्षेत्र	– 10422.51 हैक्टेयर = 8.50%
8.	अन्य कारणों से अनुपलब्ध क्षेत्र	– 6636.22 हैक्टेयर = 5.41%
9.	वितरण के लिए अप्राप्त कुल क्षेत्र	– 58288.45 हैक्टेयर = 47.53%
10	शुद्ध क्षेत्र बांटने के लिए उपलब्ध	– 5638.90 हैक्टेयर = 4.60%

इस प्रकार प्रदेश में भू-जोत परिसीमन अधिनियमों को लागू करने के बाद लगभग 1.23 लाख हैक्टेयर भूमि अतिरेक घोषित की गई। इसमें से लगभग 0.85 लाख हैक्टेयर भूमि पर कब्जा लिया गया और लगभग 0.59 लाख हैक्टेयर जमीन को 52563 लोगों/समितियों में वितरण किया गया, जिसका विवरण नीचे दिया गया है।

मार्च 1988 तक

	संख्या	क्षेत्र (हैक्टेयर में)
1. अनुसूचित जाति	15180	14912
	28.88%	12.16%
2. अनुसूचित जनजाति	20077	24026
	38.20%	19.59%
3. अन्य अल्पसंख्यक	226	306
	0.43%	0.25%
4. सामान्य	16999	17875
	32.34%	14.58%
5. समितियां	81	1568
	0.15%	1.28%
कुल	52563	58688
	100.00%	100.00%

संक्षेप में घोषित अतिरिक्त भूमि में से केवल 4.60 प्रतिशत भूमि वितरण के लिए उपलब्ध है। यह बहुत कम है। अतिरिक्त भूमि पुनर्वितरण के लिए ज्यादा से ज्यादा प्राप्त होने की संभावना का दोहन किया जाना जरूरी है। बेनामी तथा फर्जी नामों से भूमि का हस्तान्तरण करके भू-जोत परिसीमन कानून से अलग रहने के कारण उतनी भूमि अतिरेक में उपलब्ध नहीं हो सकी, जितनी मिलना चाहिए थी। अतएव यह सुझाव राष्ट्रीय स्तर पर दिया गया है कि वर्तमान भू-जोत की सीमा कम करके अतिरिक्त भूमि की स्थिति में सुधार किया जा सकता है। इसके लिए भू-जोत परिसीमन कानून में संशोधन करना पड़ेगा, जिससे दो फसली सिंचित, एक फसली सिंचित और बारानी क्षेत्रों के लिए क्रमशः 5, 7.5 और 12 हैक्टेयर की भू-जोत सीमा निर्धारित करके अधिनियम को लागू किया जा सके। वर्तमान में घोषित अतिरिक्त क्षेत्र जिस पर अभी तक कब्जा नहीं लिया गया, वह लगभग कुल घोषित अतिरेक क्षेत्र का लगभग 30% है, जिसमें से केवल 24.44% क्षेत्र मुकदमेबाजी में फंसा है और केवल 1.63% क्षेत्र पर कब्जा किया जा सकता है। यदि मुकदमेबाजी से क्षेत्र को मुक्त किया जा सके, तब काफी क्षेत्र वितरण के लिए मिल सकता है।

प्रदेश में जोत समेकन (चकबंदी) कानूनी रूप से अनिवार्य न होकर स्वैच्छिक है। प्रदेश में पांचवीं योजना के अंत तक 38.66 लाख हैक्टेयर क्षेत्र ही समेकित किया जा सका। मार्च 86 तक भी यही स्थिति प्रतिवेदित की गई है। अतएव भू-जोतों की चकबंदी अनिवार्य करके ही 10 वर्षों के भीतर प्रदेश में इस कार्यक्रम को पूर्ण किया जा सकता है। प्रदेश में वर्ष 1985-86 में 75.48 लाख कार्यशील जोतों के अन्तर्गत 220.86 लाख हैक्टेयर क्षेत्र था। इस दृष्टि से केवल 17.50 प्रतिशत क्षेत्र की ही चकबंदी हो पाई है। भू-जोतों के अनार्थिक एवं छिन्नभिन्न (बिखराव) इकाइयों को समेकित करके न केवल प्रक्षेत्र प्रबंध दक्षता में सुधार आता है, वरन् कृषि उत्पादन में भी वृद्धि होती है। वर्ष 1976 में चकबंदी योजना को बंदोबस्त योजना में समाहित कर दिया और गांव के दो तिहाई किसानों की सहमति के साथ आवेदन करने पर ही चकबंदी हो सकती है। चकबंदी अनिवार्य करने पर यह संभावना रहती है कि कम भू-धारकों को उपजाऊ भूमि के बदले में कम उपजाऊ भूमि प्राप्त न हो जाये।

भूमि सुधार कार्यक्रमों का सटीक क्रियान्वयन और प्रगति का लेखा-जोखा इस पर निर्भर करता है कि प्रदेश में भू-अभिलेख की अद्यतन स्थिति क्या है? प्रदेश में 50-60 वर्षों पूर्व विभिन्न व्यवस्थाओं के अन्तर्गत भू-सर्वेक्षण एवं बन्दोबस्त कार्यों को किया गया था। प्रदेश के 75766 गांवों में से लगभग 50% के भू-अभिलेखों की परिशुद्धता शंकास्पद थी, लगभग 4 हजार गांवों का या तो बिल्कुल सर्वेक्षण नहीं हुआ अथवा दृष्टि मूल्यांकन के द्वारा सर्वेक्षण हुआ और लगभग 1500 गांवों के मूल सर्वेक्षण नक्शे उपलब्ध नहीं थे। वर्ष 74-75 में प्रदेश को समस्त गांवों के पुनर्वेक्षण की शुरुआत की गई। 19 जिलों में परंपरागत पद्धतियों से और 8 जिलों में एरियल फोटोग्राफी के द्वारा सर्वे कार्य प्रारंभ किया गया। इसी प्रकार राजस्व प्रशासन को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने

केन्द्रीयकृत योजना की शुरुआत की है, जिससे पटवारी और राजस्व निरीक्षक का कार्यभार कम होगा। प्रदेश में पांच गांवों पर एक पटवारी और औसत 19 पटवारी हलकों पर एक राजस्व निरीक्षक होता है। अब एक पटवारी हलका के अन्तर्गत 2800 हैक्टेयर क्षेत्र अथवा 2000 सर्व मानांक अथवा 1200 जोतें और राजस्व निरीक्षक पटवारी अनुपात 1:12 से अधिक नहीं रहेगा। प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही अच्छे परिणाम भूमि सुधारों के क्षेत्र में प्राप्त हो सकते हैं। अतएव प्रदेश के समस्त विकास खण्डों को तहसील का दर्जा प्रदान करके तथा बड़े जिलों को विकास के अनुरूप छोटे जिलों में सीमांकन करना जरूरी है। इस हेतु केन्द्रीय शासन की सहायता जरूरी है, ऐसा करके ही भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति, परिवर्तित नीति के अनुरूप ग्रामीण विकास की मुख्यधारा के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पर ज्यादा नजर रखकर अच्छे परिणाम हासिल हो सकते हैं। राजनैतिक इच्छाशक्ति ने पुनः भूमि सुधारों को जीवन्त किया है। प्रशासन की इच्छाशक्ति को दृढ़ता प्रदान करके तथा लोगों की भागीदारी समवेत करके, भूमि सुधार प्रदेश में वास्तविक बन सकते हैं। इस दिशा में प्रदेश ने उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की हैं और स्थिति भी कतिपय भूमि सुधारों में मजबूत की है लेकिन अभी भी प्रदेश को इस क्षेत्र में बहुत आगे ले जाना है, जिससे भूमि-धारण का सामन्ती ढांचा तीव्र विकास प्रक्रिया में अड़चनें पैदा न करें।

कृषि अर्थशास्त्र विभाग,
ज. न. कृषि विश्वविद्यालय,
जबलपुर — मध्य प्रदेश

निर्माण-पथ

बिलास बिहारी

आज नये निर्माण-पथ पर देश हमारा बढ़ा जा रहा।

नव प्रभात के नये स्वप्न को
संजो रही भारत की धरती
चौर-चौस, टीकर, सागर-तट
कोई भूमि नहीं है परती
नये जमाने का नव साधन खेतों में अब जुड़ा जा रहा।

दूर-दूर तक हर क्यारी में
गोरे-गोरे धान लगे हैं
सहकारी खेती के फल से
प्यारे-प्यारे बीज उगे हैं
नई नियोजित सरिता का मुख मरूभूमि पर मुड़ा जा रहा।

सर्वोदय के महामंत्र से
अपना हृदय विमल करना है
राम-राज्य की मधुर कल्पना
निश्चय हमें सफल करना है
आज नये फर्मे पर नूतन देश हमारा गढ़ा जा रहा।

श्रम-सीकर से सींची माटी
सोना ही सोना उगलेगी
अतलातल से कामधेनु-सी
गंगा की धारा निकलेगी
आज नया निर्माण-विहग उन्मुक्त गगन में उड़ा जा रहा।
आज नये निर्माण-पथ पर देश हमारा बढ़ा जा रहा।

2/32, स्टेट बैंक कालोनी नं. 2,
खजपुरा, बेली रोड, पटना-800014

भूमि सुधार और सामाजिक न्याय

सुरेन्द्र द्विवेदी

गांव और गरीबी का गहरा सम्बन्ध है। वहां पर अधिसंख्य आबादी के लिए उत्पादन का मुख्य स्रोत कृषि भूमि है जो सभी को हासिल नहीं है। समय और परिस्थितियों के अनुसार ग्रामीण इलाकों में यह भी समस्या पैदा हुई है कि जिन लोगों के पास जमीन है वे स्वयं खेती नहीं करते हैं या करना नहीं चाहते हैं क्योंकि शिक्षा एवं औद्योगिक विकास के साथ वे दूसरे आर्थिक एवं उत्पादन क्षेत्रों की ओर मुड़ गए हैं। जो वास्तव में खेती करते हैं उन्हें कृषि भूमि पर मालिकाना हक प्राप्त नहीं है। इसके साथ ही दूसरी जटिल समस्या यह भी रही है कि एक अरसे से भूमि वितरण में चली आ रही विसंगतियों के कारण कुछ हाथों में बड़ी मात्रा में कृषि भूमि सिमट गई है। जबकि सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग भूमिहीन बन गया। भूमि वितरण की ये विसंगतियां विभिन्न इलाकों में सामाजिक एवं आर्थिक तनावों का कारण भी बनी है।

स्वतंत्रता के बाद से ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए भूमि सुधार को उच्च प्राथमिकता दी गई है। प्रारम्भ में भूमि सुधार का मुख्य उद्देश्य भूमि पर अंग्रेजों के समय से चले आ रहे सामन्तवादी एवं अर्द्ध सामन्तवादी वर्ग के अधिकार को समाप्त करना तथा आम किसानों के शोषण एवं उत्पीड़न को रोकना था। आखिर महात्मा गांधी ने भी अपने स्वतंत्रता संघर्ष की शुरुआत उत्तरी बिहार के चम्पारन क्षेत्र के किसानों को अंग्रेज निलहों के शोषण से मुक्ति दिलाने से की थी। भूमि सुधार की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश सहित अनेक राज्यों में जमींदारी एवं जागीरदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया जो सरकार और किसानों के बीच बिचौलियों के रूप में काम कर रही थी। वह व्यवस्था किसानों के शोषण और उत्पीड़न की प्रतीक बन गई थी।

जमींदारी एवं जागीर व्यवस्था को छठे दशक में समाप्त किये जाने के फलस्वरूप सरकार को 60 लाख हैक्टेयर भूमि प्राप्त हुई थी, जिसे भूमिहीनों एवं सीमान्त किसानों में वितरित किया गया। इसके अलावा 2 करोड़ किसानों को बिचौलिए समाप्त कर सीधे सरकार के सम्पर्क में लाया गया। इन जमींदारों एवं जागीरदारों का देश की करीब 40 प्रतिशत भूमि पर अधिकार था। इसके बाद कृषि भूमि कानूनों में परिवर्तन करके किसानों एवं पट्टेदारों को भूमि पर मालिकाना अधिकार दिये गये। भूमि की चकबन्दी कराई गई, अतिरिक्त उपलब्ध भूमि को भूमिहीनों में बांटने का काम किया गया तथा कृषि जोतों के रिकार्ड व्यवस्था को आधुनिक बनाने के प्रयास किये गये।

यद्यपि पिछले चार दशकों में भूमि सुधार की दिशा में कई महत्वपूर्ण एवं प्रभावी कदम उठाये गये हैं फिर भी इस मामले में बहुत कुछ करना बाकी है। इनमें पट्टेदारों, बटाईदारों की सुरक्षा तथा उन्हें मालिकाना हक दिलाना, बिचौलिये पट्टेदारों की समाप्ति, भूमि सीमा को तर्कसंगत स्तर पर निर्धारित करना तथा इससे उपलब्ध भूमि को भूमिहीनों में वितरण करना तथा कृषि जोत रिकार्डों का आधुनिकीकरण करना शामिल है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सन् 1950 से लेकर अब तक सम्पूर्ण देश में भूमि सुधार सम्बन्धी 169 अधिनियम बनाये गये हैं तथा उन्हें संविधान की नौवीं सूची में शामिल किया गया है जिससे उनको अदालत में चुनौती न दी जा सके।

किसानों को कृषि जोतों का मालिकाना अधिकार देने की योजना के अन्तर्गत देश के अधिकतर भागों में कानूनी व्यवस्था की गई है। इसके लिए काश्तकार को जमींदार या सरकार को उचित मुआवजा देने के बाद कृषि जोतों पर मिलकियत प्रदान की गई है। जिन राज्यों के कृषि जोतों पर काश्तकारों को कानूनी तौर से मालिकाना हक दिया गया है उनमें आन्ध्र प्रदेश का कुछ क्षेत्र, असम, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश शामिल हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत देश के करीब 77.2 लाख काश्तकारों को 56 लाख हैक्टेयर कृषि भूमि का कानूनी तौर से मालिक बनाया गया है। असम में यह कानून अभी पूरी तौर से लागू नहीं किया जा सका है। कृषि भूमि सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत अब कानूनी तौर से अपनी जमीन को खेती के लिए किसी को पट्टे

पर देने के भूमिपतियों के अधिकार को सीमित कर दिया गया है। जिन भूमिपतियों को छूट दी गई है उनमें सेना के जवान, विधवा अथवा अविवाहित महिलायें, नाबालिग अथवा शारीरिक या मानसिक दृष्टि से अपंग शामिल हैं। परन्तु कृषि जोतों पर काश्तकारों को मालिकाना हक देने के सिलसिले में आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, बिहार, पंजाब, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के कुछ हिस्सों में इस प्रकार का कानून अभी तक नहीं बनाया गया है, फिर भी जोतदारों को इन राज्यों में पट्टे की सुरक्षा प्रदान की गई है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर, केरल, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में भूमि मालिकों द्वारा पट्टे पर जमीन देने के अधिकार पर रोक लगा दी गई है, कुछ राज्यों में पट्टेदारों को लीज पर दी गई कृषि भूमि पर मालिकाना हक देने का प्रावधान किया गया है और उन्हें बेदखल किये जाने के अधिकारों को सीमित कर दिया गया है। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल में 13 लाख बटाईदारों (बरगा दार) को कानूनी रिकार्ड में लाया गया है परन्तु इस प्रकार का कदम अभी बिहार में नहीं उठाया गया है।

सातवीं योजना अवधि में भूमि सुधार कार्यक्रम को गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रम के साथ जोड़ दिया गया और छोटे सीमान्त एवं मध्यम वर्ग के किसानों के लिए सरकार की ओर से आर्थिक सुविधायें जुटाने पर बल दिया गया। कृषि उपकरणों एवं खाद, बीज आदि के लिए बैंकों से ऋण सुविधा का विस्तार किया गया।

ग्रामीण क्षेत्रों के योजनाबद्ध विकास के क्रम में इस शताब्दी के छठे एवं सातवें दशक में कृषि जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने सम्बन्धी कानून अनेक राज्यों में पारित किये गये तथा उन्हें कमोबेश ढंग से लागू भी किया गया। इन कानूनों में कुछ खामियां होने के बावजूद 27.16 लाख एकड़ प्राप्त अतिरिक्त कृषि भूमि में से 24.96 लाख एकड़ भूमि सरकार ने अधिग्रहीत कर ली। इसमें से 20.40 लाख एकड़ भूमि को 41.42 लाख लोगों में बांटा गया। जिन लोगों में इस अतिरिक्त भूमि को बांटा गया उनमें 45 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति या जनजाति के थे। सन् 1972 में राष्ट्रीय स्तर पर इन जोत सीमा कानूनों की समीक्षा करके उन्हें और कड़ा बनाया गया और पुरानी कानूनी खामियों को दूर किया गया। नये केन्द्रीय दिशा-निर्देश के अनुरूप विभिन्न राज्यों में बनाये गये जोत सीमा कानूनों के फलस्वरूप विभिन्न राज्यों की 46.33 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई। जिसमें से 35.45 लाख एकड़ भूमि को राज्य सरकारों ने अधिग्रहण किया परन्तु इसमें से 24.51 लाख एकड़ भूमि ही 20.10 लाख लोगों में बांटी गई। इस वितरित भूमि से आधे से अधिक अनुसूचित जाति एवं जनजाति के परिवार लाभान्वित हुए। दूसरे शब्दों में अब तक जोत सीमा कानूनों के तहत कुल 73.48 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त प्राप्त हुई। जिसमें से 60.40 लाख एकड़ भूमि सरकार ने अधिग्रहीत की और 44.92 लाख एकड़ कृषि भूमि को कमजोर वर्गों के बीच बांटा गया है। जो भूमि बांटी नहीं जा सकी उसमें से अधिकतर जमीन अदालती मामलों में उलझी है तथा करीब एक चौथाई भूमि कृषि योग्य नहीं है।

देश में अधिकतर कृषि जोतें छोटी और बिखरी हुई हैं। कृषि उत्पादकता को बढ़ाने तथा खेती में आधुनिक तकनीक लागू करने के लिए जोत सीमा के साथ-साथ खेतों की चकबन्दी करना भी जरूरी होती है। इस चकबंदी प्रणाली को पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में लगभग पूरा कर लिया गया है। अन्य राज्यों उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश में चकबंदी का काम कुछ चुने हुए इलाकों में ही किया गया है। अब तक देश के 15 राज्यों में चकबंदी कानून पारित किये जा चुके हैं। परन्तु मणिपुर, त्रिपुरा, तमिलनाडु, केरल तथा आन्ध्र प्रदेश के कुछ इलाके में यह कानून अभी अस्तित्व में नहीं आया है। अधिकतर राज्यों में चकबन्दी को अनिवार्य बनाया गया है जबकि मध्य प्रदेश और पश्चिम बंगाल में इसे ऐच्छिक करार दिया गया है। उत्तर पूर्वी सीमावर्ती राज्यों में चकबन्दी की जरूरत नहीं समझी गई है।

किसानों की आशंकाओं के बावजूद चकबंदी के मामले में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अब तक 584.72 लाख हैक्टेयर कृषि जोतों की चकबंदी की जा चुकी है। चकबंदी का काम निपटाने में सरकारी तंत्र को हिदायत दी गई है कि छोटे, सीमान्त एवं बटाईदार किसानों के हितों की रक्षा की जाए। अनुभव यह आया है कि इस मामले में किसानों को इसके लाभ के बारे में पर्याप्त जानकारी देने की जरूरत है जिससे मुकदमें-बाजी न हो। सातवीं योजना अवधि में देश में कुल चकबंदी योग्य उपलब्ध कृषि जोतों की एक चौथाई हिस्से की चकबंदी करने की योजना है। यह चकबन्दी उन क्षेत्रों में प्राथमिकता के आधार पर लागू करने का प्रस्ताव है जहां पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध है और जिन इलाकों को सघन खेती के लिए चुना गया है।

1988 दिसम्बर में विभिन्न राज्यों के राजस्व मंत्रियों के विशेष सम्मेलन में भूमि सुधार में हुई प्रगति की समीक्षा की गई थी तथा भूमि सुधार के उन विशेष मुद्दों पर विचार किया गया जिन पर अगली आठवीं योजना में खास जोर दिया जाना है।

सम्मेलन में इस बात पर बल दिया था कि अगली योजना में ऐसे जोतदारों एवं बटाईदारों का पता लगाया जाये जो वास्तविक जोतदार होने के बावजूद कानूनी हकदार नहीं बन सके। उन्हें खातेदार बनाया जाये। इसके अलावा सम्मेलन में

जनजाति के उन परिवारों का पता लगाने जिनकी जमीन किन्हीं कारणों से उनके हाथों से निकल गई है, उन्हें जमीन वापिस दिलाने, आवंटित भूमि पर लोगों को कब्जा दिलाने तथा भूमि के विकास के लिए आर्थिक अनुदान की व्यवस्था जुटाने की सिफारिश की गई। इसके साथ ही सम्मेलन ने विभिन्न राज्यों में भूमि रिकार्ड ठीक करने तथा उन्हें आधुनिक बनाने के लिए केन्द्रीय सहायता देने का भी अनुरोध किया। राष्ट्रीय स्तर पर राजस्व आयोग बनाने का भी सुझाव दिया गया है जिससे राजस्व प्रशासन को मजबूत बनाया जा सके और भूमि रिकार्ड बेहतर स्थिति में रखे जा सकें।

सम्मेलन ने यह भी अनुभव किया है कि कृषि जोत की अधिकतम सीमा निर्धारण के बाद अनुमान से कम अतिरिक्त भूमि बांटने के लिए उपलब्ध हो सकी है। इसके पीछे कारण यह माना जाता है कि कानूनी खामियों का लाभ उठाकर बड़े जोतदारों ने भूमि सीमा कानूनों को नकार दिया है। अतः इस अनुभव के संदर्भ में राज्यों को वर्तमान कानूनों को और भी कड़ा बनाने, छूट की सीमा की समीक्षा करने तथा जोत सीमा को कम करने की सलाह दी गई है। परन्तु अभी तक इस मामले में कोई खास प्रगति नहीं हो सकी है।

जोत सीमा के तहत प्राप्त घटिया किस्म की अतिरिक्त सीमा को विकसित करने के लिए आवंटियों को पच्चीस सौ रुपये प्रति हैक्टेयर के हिसाब से आर्थिक सहायता देने की योजना शुरू की गई है। इस अनुदान राशि में केन्द्र और राज्य सरकारों की आधी-आधी हिस्सेदारी होगी। पिछले वित्त वर्ष के दौरान केन्द्र सरकार ने करीब 4.5 करोड़ रुपये का इस मद में अनुदान प्रदान किया है।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के परिवारों की कृषि जोतों की रक्षा के लिए उनकी भूमि का गैर अनुसूचित जनजाति के लोगों को हस्तांतरण प्रतिबंधित कर दिया गया है। इसके लिए प्रशासनिक प्रबन्धों के साथ-साथ कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है।

ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के भूमि रिकार्ड को समयानुसार ठीक रखने तथा किसानों को उसकी समुचित जानकारी देने की पुरानी समस्या रही है। इस स्थिति से निपटने के लिए अनेक राज्यों में जमीन पट्टा पास बुक जारी करने की प्रणाली शुरू की गई है। जिन राज्यों में इस योजना को लागू किया गया है उनमें आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश शामिल हैं। ये पास बुक कानूनी दस्तावेज के रूप में है तथा उसके आधार पर बैंकों से ऋण प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

भूमि रिकार्डों को तैयार करने में आधुनिक तकनीक का प्रयोग करने की योजना के अन्तर्गत देश के सात राज्यों में पायलट परियोजनायें प्रायोगिक तौर पर शुरू की गई हैं। केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कम्प्यूटर आधारित भूमि रिकार्ड परियोजना को प्रारंभिक दौर में मध्य प्रदेश, गुजरात, असम, उड़ीसा, बिहार, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश के एक-एक जिले में शुरू की गई है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक नियंत्रण समिति गठन की गई है। इन परियोजनाओं के अनुभव के आधार पर भूमि रिकार्डों को आधुनिक बनाने के लिए एक व्यापक राष्ट्रीय योजना तैयार करने का प्रस्ताव है।

8, कनाट लेन, नई दिल्ली-1,

"कुरुक्षेत्र" मंगाने का पता

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

वार्षिक : 20.00 रु.
द्विवार्षिक : 36.00 रु.
त्रिवार्षिक : 48.00 रु.
चेक/बैंक ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डर
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग के नाम देय होना चाहिए।

बंजर भूमि का सुधार

धर्मेन्द्र त्यागी

हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि-क्षेत्र का योगदान अपना विशेष महत्व रखता है। देश की 70 प्रतिशत से भी अधिक आबादी खेती पर निर्भर है। इसलिए कृषि भूमि का व्यापक स्तर पर संरक्षण और संवर्द्धन अत्यावश्यक है। सरकार ने इस दिशा में ध्यान दिया है लेकिन अपेक्षित परिणाम अभी तक हमारे सामने नहीं आ सके हैं। बल्कि समस्या दिन-ब-दिन जटिल हो रही है। इसके दो कारण मुख्यतः हैं एक जनसंख्या-वृद्धि और दो—कृषि योग्य भूमि में लगातार कमी होना। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों में लाखों हैक्टेयर भूमि बंजर पड़ी है, जिसका समुचित विकास अभी तक नहीं हो पाया है। उल्टे बंजर भूमि का क्षेत्रफल बढ़ता जा रहा है।

प्रमुख नगरों और महानगरों के आसपास की कृषि योग्य भूमि पर बहुमंजिली इमारतें खड़ी की जा रही हैं ताकि लोगों की आवास की समस्या को हल किया जा सके। लेकिन आवास की समस्या भी दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही है। दरअसल, जनसंख्या वृद्धि की समस्या पर जितनी तेजी से काबू पाया जाना चाहिए था, वह नहीं पाया जा सका। आजादी के समय से देश की जनसंख्या आज दुगने से भी अधिक हो चुकी है, जबकि सन् 1951 से देश में परिवार नियोजन के कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं। अब तक अरबों रुपया इस मद में खर्च किया जा चुका है लेकिन उसका परिणाम अपेक्षा से कम मिला है।

हमारे देश के किसानों ने भारी परिश्रम करके खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त की, लेकिन फायदा भी सभी किसानों तक समुचित रूप में अभी तक नहीं पहुंच पाया। वह समय हम भूल कैसे सकते हैं जबकि देश को राजनैतिक आजादी मिली और इसके तत्काल बाद ही हमें देशवासियों को आवश्यक रूप से अन्न उपलब्ध कराने के लिए अमेरिका से पी.एल. 480 गेहूं मंगाना पड़ा। फिर काफी समय तक जौ, बाजरा, मकई आदि मोटे अनाज पैदा करके हमें अपना काम चलाना पड़ा। धीरे-धीरे देश आत्मनिर्भर होता गया। आज हम पूरी तरह आत्मनिर्भर हैं भी। लेकिन यह आत्मनिर्भरता भी एक अभिशाप-सा बनती जा रही है? इस आत्मनिर्भरता के लिए भूमि को उपजाऊ बनाने के पारम्परिक तरीकों को छोड़कर हम कीटनाशकों पर तेजी से निर्भर होते चले गए। गोबर की खाद की जगह यूरिया आदि ने ले ली। इससे खाद्यान्नों की पैदावार तो बढ़ी लेकिन अनेक घातक रोगों का जाल भी बनता चला गया। कृषि भूमि के लिए और मानव जीवन के लिए कीटनाशक दीर्घकालिक रूप में कितने हानिकारक होंगे, यह सोचना ही भूल गये? विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक ताजा सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार विश्व में इन कीटनाशक दवाओं के जहरीले प्रभाव से लगभग 20 लाख लोग प्रतिवर्ष प्रभावित होते हैं और लगभग 4 लाख लोग तो अपने जीवन से ही हाथ धो बैठते हैं। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है? आम आदमी को जहरीले तत्वों से भरपूर इन कीटनाशकों का प्रयोग करने को तो तेजी से प्रेरित किया, लेकिन इनके प्राणघातक दुष्प्रभावों से सावधान होने की आवश्यक जानकारी प्रायः नहीं दी गयी। अब तो कृषि-वैज्ञानिक ही इन कीटनाशकों को सायलेंट किलर अर्थात मूक संहारक कहने को बाध्य हो गये हैं। अधूरी अथवा सतही जानकारी देने का ही दुष्परिणाम है ये? यह भी तथ्य है कि विकसित देश इन कीटनाशकों के गम्भीर दुष्परिणामों को देखते हुए अपने यहां जिन कीटनाशकों के उपयोग को पूरी तरह प्रतिबन्धित कर चुके हैं, हमारे देश में भी उन कीटनाशकों को अब प्रतिबन्धित कर देना चाहिये।

प्रतिबन्धित कीटनाशकों में एल्ड्रिन, क्लोरडेन, लिंडेन और पैराथियान आदि प्रमुख हैं। इनसे खेत की पैदावार में वृद्धि जरूर होती है, लेकिन खेत की मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। खेतों में इनका दुष्प्रभाव भी काफी समय तक रहता है। आदमी पर इनका कितना दुष्प्रभाव होता होगा, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कृषि योग्य भूमि को बंजर बनाने में भी इन कीटनाशकों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। उधर नकली कीटनाशकों का उत्पादन किसानों को कई प्रकार से नुकसान पहुंचा रहा है। बंजर भूमि में सुधार के उपाय करने के साथ ही, हमारे वैज्ञानिकों को ऐसी तकनीकों की खोज भी करनी चाहिये, जिससे इन जहरीले कीटनाशकों के प्रयोग से हमारे देश के किसान पर्याप्त रूप में मुक्त हो सकें तथा उत्पादन की रफ्तार भी बनी रहे।

जहां तक बंजर भूमि के विकास का प्रश्न है, सरकार ने इसके लिए 1985 में परती भूमि विकास बोर्ड बनाया था। इस विकास बोर्ड ने परती अर्थात् बंजर भूमि के समुचित विकास के लिए अनेक कदम उठाए। लेकिन अभी तक यह विकास बोर्ड हाथी का पांव ही सिद्ध हुआ है। गत अक्तूबर माह में सरकार ने परती भूमि विकास कार्यक्रम को सुदृढ़ करने के लिए इसे तत्काल

'तकनीकी मिशन' का दर्जा देने का निर्णय लिया है। गत 5 अक्तूबर को जारी किए गए संकल्प के अनुसार परती भूमि विकास के लिए प्रौद्योगिक मिशन का समन्वय पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा किया जाएगा, जो मिशन के सभी कार्यों के निपटान के लिए एक मिशन निदेशालय स्थापित करेगा।

मिशन निदेशालय का अध्यक्ष एक प्रयोजना निदेशक होगा, जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करेगी। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था का निरीक्षण और मार्गदर्शन एक अधिकार प्राप्त समिति द्वारा किया जाएगा। पर्यावरण और वन मंत्रालय अपनी सेवाएं इसे अर्पित करेगा। सरकार के इस निर्णय की मूल भावना निश्चित रूप से स्वागत-योग्य है। लेकिन मिशन निदेशालय को असफलता से बचाने की तरफ भी सरकार को गम्भीर रूप से सोच-विचार करना होगा, ताकि राष्ट्रीय भूमि विकास बोर्ड की भांति यह मिशन निदेशालय भी अधिक या कम मात्रा में अप्रासंगिक नहीं लगने लगे।

हमारे वैज्ञानिकों ने अनेक अन्य विधियां भी ढूंढी हैं। इन्हीं में एक 'करनाल घास' है। इसे हरियाणा राज्य के करनाल शहर में स्थित केन्द्रीय मृदा भूमि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने खोजा है। यह विधि पर्याप्त रूप से सस्ती भी है और बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने में पर्याप्त रूप से कारगर भी सिद्ध हुई है। इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी घास का पता लगाया है जिसको बंजर भूमि में उगाकर जमीन को उपजाऊ बनाया जा सकता है और जमीन की नष्ट हो चुकी उर्वरा शक्ति में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। इसी घास का नाम 'करनाल घास' रखा गया है।

यह घास क्षारीय भूमि में अपने आप उगने वाली घास है। हरियाणा तथा पंजाब में इस घास को घनेर और उत्तर प्रदेश के इलाकों में छोटी गांडर तथा सारी के नाम से जाना जाता है। यह बारह मासी घास है तथा सिंचाई और मौसम के अनुसार तीन फुट की ऊंचाई तक बढ़ जाती है। इसका तना खोखला और गांठवाला होता है। पत्तियां लम्बी और सीध में लगी होती हैं। इस घास की एक विशेषता यह है कि यह क्षारीय भूमि में सामान्य उपजाऊ भूमि के मुकाबले अधिक तेजी से बढ़ती है।

हमारे देश में इस समय लगभग 18 करोड़ हैक्टेयर भूमि बंजर है। सबसे अधिक बंजर भूमि राजस्थान में है। यहां एक करोड़ 80 लाख हैक्टेयर भूमि इस समय खेती के लिए अनुपयुक्त है। मध्य प्रदेश में एक करोड़ 30 लाख हैक्टेयर भूमि तथा उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और गुजरात में 70 से 80 लाख हैक्टेयर तक भूमि बंजर है। इसके अतिरिक्त देश में कृषि-योग्य भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाने का खतरा भी सामने है। राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली तकनीकों से बंजर भूमि को सुधारने में खर्च एक हैक्टेयर भूमि पर औसतन पांच हजार रुपये होता था। उसमें भी सफलता की कोई गारंटी नहीं थी। लेकिन करनाल घास को उगाकर इस खर्च को न केवल काफी कम किया जा सकता है बल्कि बंजर भूमि के उपजाऊ होने की गारंटी भी काफी हद तक की जा सकती है।

करनाल घास से क्षारीय भूमि का सुधार तो होता ही है, पशुओं के लिए पौष्टिक चारा भी उपलब्ध होता है। इसकी पत्तियां रसदार होती हैं, अतः जानवर इस घास को काफी चाव से खाते हैं।

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके पता लगाया है कि इस घास में पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक तत्व मौजूद हैं। इनमें 8.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 प्रतिशत कैल्शियम, 0.37 प्रतिशत मैग्नेशियम, 0.76 प्रतिशत सोडियम, 0.66 प्रतिशत पोटेशियम, 17 पी. पी. एम. जस्ता, 937 पी. पी.एम. लोहा, 8 पी. पी. एम. तांबा, 62.1 प्रतिशत पचने योग्य रेशे, 21.7 प्रतिशत सैल्यूलोज, 0.8 प्रतिशत लिग्नन और 6.3 प्रतिशत सिलिका पाया गया है। अधिक क्षारीय भूमि में बिना किसी खास देखभाल के और बिना किसी उर्वरक के एक हैक्टेयर भूमि में तीस से चालीस टन तक हरा चारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। अगर कुछ उर्वरक भी मिट्टी में मिला दिए जाएं और उचित देखभाल भी की जाए तो एक हैक्टेयर भूमि में 60 टन तक चारा आसानी से उगाया जा सकता है। बरसात के मौसम में गर्मी के मुकाबले अधिक चारा पैदा होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि इस घास को एक ही खेत में लगातार तीन साल से अधिक समय तक नहीं उगाया जाना चाहिए। ऐसा करने पर उपज और पौष्टिकता दोनों में काफी कमी आ जाती है।

बंजर भूमि की उर्वर क्षमता में सुधार के लिए करनाल घास उगाकर जो परीक्षण किए गए हैं उनके काफी उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं। इस घास की जड़ें जैसे-जैसे भूमि के अन्दर फैलती हैं, मिट्टी के सम्पर्क में आने के कारण कार्बनडाइ आक्साइड गैस बनती है जो जमीन में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट को घुलनशील बना देती है।

एक परीक्षण के दौरान बंजर भूमि में पहले साल केवल करनाल घास उगाई गई। ऐसा करने से एक हैक्टेयर भूमि में 19.9 टन चारा मिला। दूसरे साल में इसी भूमि पर घास के साथ-साथ धान और गेहूं की फसलें भी उगाई गईं। तब एक हैक्टेयर भूमि में 4.1 टन चावल, 0.3 टन गेहूं और 31 टन चारा प्राप्त हुआ। तीसरे साल के परीक्षण में अनाज की उपज और भी बढ़ गई। लेकिन तीन साल के बाद घास लगाने से कोई अतिरिक्त लाभ नहीं मिल पाया। अतः वैज्ञानिकों के सामने यह

चुनौती अभी बरकरार है कि तीन साल के बाद जमीन की उर्वरा शक्ति को कैसे कायम रखा जाए।

करनाल घास के प्रयोग में अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी में लगातार नमी का बने रहना भी जरूरी है। पानी की अधिकता से पैदावार तो अधिक होती ही है, बंजर भूमि का विकास भी तेजी से होता है। उत्तर भारत में इस घास को उगाने का सबसे उपयुक्त समय मध्य जून से मध्य जुलाई तक है। मानसून से कुछ समय पहले या इसके शुरू होते ही बुवाई करने से घास का अंकुरण अधिक अच्छी तरह होता है।

हमारे देश में बंजर भूमि की जो गम्भीर समस्या है उसके समाधान के लिए करनाल घास काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है क्योंकि आम किसान की हालत अभी ऐसी नहीं है कि वे बंजर भूमि में सुधार के लिए किसी महंगी—रासायनिक विधि को अपना सके। अतः करनाल घास के बारे में किसानों को विस्तार से जानकारी दी जानी चाहिए। साथ ही दूसरी विधियों की खोज में भी हमारे वैज्ञानिकों को लगे रहना चाहिए तथा सरकार को इस काम में उन्हें हर प्रकार का सहयोग लगातार देना चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि बंजर भूमि के विकास की प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का व्यवधान देश के सामने गम्भीर संकट उत्पन्न कर देगा।

टाइप-वो, बी-26/368,
डी. एम. एस. कालोनी, हरिनगर घंटाघर,
नई दिल्ली-110064

जवाहर रोजगार एवं जन-सहयोग से विद्यालय भवन का निर्माण

प्रेम सिंह

श्रीगंगानगर जिले की सूरतगढ़ पंचायत समिति क्षेत्र के तहत एक गांव है लिखमीसर जो कि पीलीबंगा-भगवानगढ़ सड़क पर पीलीबंगा से 13 कि. मि. की दूरी पर स्थित है। लिखमीसर ग्राम पंचायत मुख्यालय है, जहां पर आयुर्वेदिक चिकित्सालय, पशु चिकित्सालय, उप-स्वास्थ्य केन्द्र, पोस्ट आफिस, स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर की शाखा के अतिरिक्त पेयजल तथा विद्युत आदि की समस्त आधुनिक सुविधाएं ग्रामीणों को उपलब्ध हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में यहां पर माध्यमिक विद्यालय के अतिरिक्त एक प्राथमिक विद्यालय और दो मान्यता प्राप्त एवं 3 बिना मान्यता प्राप्त विद्यालय कार्यरत हैं। नेहरू युवा केन्द्र की ओर से प्रौढ़ों को शिक्षा का लाभ देने के लिए जन-शिक्षण निलियम तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र का संचालन किया जा रहा है। गांव की लड़कियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से सन् 1988 में यहां छात्रों का एक प्राथमिक स्तर का विद्यालय अलग से स्वीकृत हुआ, लेकिन भवन के अभाव में यह विद्यालय वर्ष 1988-89 में छात्रों के प्राथमिक विद्यालय भवन में ही संचालित होता रहा।

ग्रामीण विकास को गति देने तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों, ग्रामीण महिलाओं एवं अन्य पिछड़े वर्गों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई जवाहर रोजगार योजना से कन्या विद्यालय का भाग्योदय हुआ। जवाहर रोजगार योजना के तहत ग्राम पंचायत को 6-7 हजार रुपये की राशि प्राप्त हुई। गांव के उत्साही सरपंच श्री हरचन्द राम धारणियां के प्रयास से यह निर्णय लिया गया इस राशि से कन्याओं के प्राथमिक विद्यालय भवन का निर्माण करवाया जाए। इसके लिए जन-सहयोग के रूप में 44 हजार रुपये की राशि एकत्रित की गई।

उक्त विद्यालय के निर्माण के लिए पंचायत द्वारा दुकानों के लिए भूखण्ड बेच कर एकत्रित की गई राशि से 55 हजार ईंटें भी खरीदी गईं। इस प्रकार भूखण्ड की आय, जवाहर रोजगार योजना के तहत एवं जन-सहयोग से प्राप्त धनराशि से गांव में प्राथमिक कन्या विद्यालय भवन का निर्माण कार्य करवाया गया। अब इस विद्यालय के लिए 16 x 20 साइज के दो कमरे, बरामदा तथा कार्यालय के लिए अलग से एक कमरे का निर्माण करवाने के साथ-साथ विद्यालय भवन की 320 x 155 चार दिवारी का निर्माण भी करवाया गया है।

ग्रामवासी इस बात से बहुत प्रसन्नचित हैं कि 'जवाहर योजना' के शुरू होने से उन के गांव में लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा के लिए एक अलग से विद्यालय का निर्माण सम्पन्न हो पाया है। अतः गरीब परिवारों के पुरुषों एवं महिलाओं को गांव में ही रोजी-रोटी का साधन मिल सकेगा। □

उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण उद्योगों का विकास

पूरन प्रकाश पुरवार

भारतीय अर्थव्यवस्था की कृषि रीढ़ की हड्डी है तथा कृषि पर आधारित उद्योगों का अपना एक विशेष महत्व हो जाता है। सन् 1981 की जनगणना के आधार पर उत्तर प्रदेश में 82 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। जिसमें 78 प्रतिशत जनसंख्या का कृषि ही जीविकोपार्जन का साधन है और अर्थव्यवस्था भी लगभग कृषि पर ही आधारित है।

सरकार पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास पर पर्याप्त ध्यान दे रही है। वर्ष 1989-90 में सरकार ने केन्द्रीय बजट में 1762 करोड़ रुपये ग्रामीण विकास के लिए आवंटित किये हैं। सरकार ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए कम ब्याज पर ऋण तथा प्रशिक्षण, औद्योगिक परामर्श निःशुल्क प्रदान कर रही है जिससे गरीब परिवार कम पूंजी लगाकर लघु व कुटीर उद्योगों को स्थापित कर सकें। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों को ऋण में 15 प्रतिशत की छूट दी जाती है जिससे उद्योग लगाने के लिए उनको प्रोत्साहन मिलता है और वह अपने परिवार का भरण पोषण करते हैं।

उत्तर प्रदेश आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ है क्योंकि आबादी का एक बड़ा हिस्सा गांवों में निवास करता है और गांवों में शिक्षा का स्तर काफी गिरा हुआ है। प्रदेश की 29.62 प्रतिशत आबादी साक्षर है। यहां शिक्षा के साधन अत्यन्त कम उपलब्ध हैं। सरकार ने शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए व्यापक प्रयास किये हैं। गांवों में शिक्षा का अभाव होने से नवयुवक शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। थोड़ा बहुत पढ़ा नवयुवक आज मेहनत का काम करने से कतराता है और वह कृषि नहीं करता है। परिणाम यह होता है कि बेरोजगारी बढ़ती है और कृषि पर आश्रितों की संख्या बढ़ जाती है जबकि विश्व के विकासशील देशों में कृषि पर आश्रितों की संख्या में कमी आ रही है. अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा में 20 प्रतिशत आबादी ही कृषि पर आश्रित है।

ज्ञातव्य है कि प्रदेश की अर्थव्यवस्था अत्यन्त दयनीय है। इसीलिए ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तथा प्रदेश का चहुंमुखी विकास हो सके।

कृषि व्यवस्था

प्रदेश में जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है। प्रदेश के कुल क्षेत्रफल के 58.5 प्रतिशत भाग पर कृषि होती है। इसीलिए नियोजनकाल में कृषि को शीर्षस्थ स्थान दिया गया है। हमारी कृषि पहले वर्षा पर निर्भर करती थी लेकिन आज कृषि के लिए नये-नये औजार तथा सिंचाई की नई-नई व्यवस्थायें तथा अधिक उत्पादन करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

छठी पंचवर्षीय योजना में 1970-71 को आधार वर्ष मानते हुए कृषि क्षेत्र के विकास में 28.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। सातवीं योजना के प्रथम तीन वर्षों में प्रदेश को इस शताब्दी का सर्वाधिक भयानक सूखे का सामना करना पड़ा, इसके बावजूद विकास दर मन्द नहीं पड़ी और 1986-87 में 753.3 सूचकांक पर बनी रही।

वर्तमान वर्ष में कृषि उत्पादन में एक नये कीर्तिमान की आशा है जो वर्तमान योजना का सर्वाधिक 334 लाख टन अनुमानित है। गत वर्ष यह उत्पादन 281.19 लाख टन था।

यह उपलब्धि बेहतर प्रबंध तथा आधुनिक तकनीक के माध्यम से प्राप्त हो सकी है। प्रदेश में प्रति हैक्टेयर उर्वरक उपयोग वर्ष 1980 के 45 किलोग्राम से बढ़कर अब 71 किलोग्राम से कुछ अधिक हो गया है। कृषि सेवाओं का विस्तार किया गया, उन्नत बीजों के वितरण में वृद्धि हुई तथा ऐसी व्यवस्था की गयी कि गांव में या नजदीक किसी ब्लाक में एक स्थान पर सभी चीजें उपलब्ध हो सकें। ऋण की सुविधा, फसल ऋण, फसल बीमा में वृद्धि की गई है।

उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अभाव में अर्थव्यवस्था नगण्य दिखायी पड़ेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक जनसंख्या के कारण कृषि जोत छोटे-छोटे भागों में बंटी है जिससे कृषि करने में परेशानी

उठानी पड़ती है। अधिकतर कृषक गरीब होने के कारण कम पूंजी लगाकर या मजदूरी करके अपने परिवार का पालन पोषण करते हैं। उत्तर प्रदेश में नियोजन काल में कृषि उद्योग पर विशेष ध्यान दिया गया है। सरकार द्वारा हरित क्रांति की घोषणा हुई जिसके कारण प्रदेश में कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई है। प्रदेश सरकार द्वारा अनेक समन्वित कार्यक्रमों की घोषणा की गई है जिसकी वजह से ग्रामीण विकास तथा कृषि व्यवस्था सुदृढ़ हो रही है।

लघु व कुटीर उद्योग

योजना आयोग के अनुसार "ग्रामीण उद्योगों को विकसित करने का उद्देश्य कार्य के अवसरों में वृद्धि करना है। आय के एवं रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाना तथा एक अधिक संतुलित एवं समन्वित अर्थव्यवस्था का निर्माण करना है।" गांधीजी के शब्दों में "भारत का मोक्ष लघु व कुटीर उद्योग में निहित है।"

लघु व कुटीर उद्योग की स्थापना करने में बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती है इसीलिए ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी तथा बेरोजगारी दूर करने का सबसे अच्छा साधन है और यह सबसे अधिक प्रभावशाली है।

उत्तर प्रदेश में लघु व कुटीर उद्योग का विकास 1967-77 के दशक में अच्छा हुआ क्योंकि उस समय तक निबंन्धित इकाइयों की संख्या 3119 हो गई थी तथा उत्पादन का मूल्य 129 करोड़ रुपये हो गया था और इसमें 4.58 लाख लोगों को रोजगार मिल चुका था।

लघु उद्योगों की स्थापना के लिए सरकार ने विशेष रियायतें उपलब्ध कराईं, जैसे बिजली, कम ब्याज पर ऋण, ऋण में छूट, उद्योग लगाने में परामर्श, पूंजी निवेश, स्टाम्प ड्यूटी अनुदान व बिक्री कर आदि में छूट देने से उद्यमियों को अपनी इकाइयां स्थापित करने में प्रेरणा मिली जिसका परिणाम अच्छा रहा। लघु व कुटीर उद्योगों का पर्याप्त विकास हुआ। 1987-88 में प्रदेश में 1.89 लाख लघु औद्योगिक इकाइयां कार्यरत थीं। इससे उद्यमियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। इन इकाइयों में से 24000 इकाइयां इसी वर्ष स्थापित की गईं, जिससे 1.40 लाख लोगों को रोजगार की व्यवस्था हुई, चालू वित्तीय वर्ष में उद्यम से सम्बन्धित विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग एक लाख व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया है। 1987-88 में खादी ग्रामोद्योग द्वारा 211 करोड़ रुपयों का उत्पादन किया गया तथा 3.81 लाख लोगों को रोजगार दिया गया है।

उत्तर प्रदेश में कुटीर उद्योग का आज ही नहीं प्राचीन काल में भी गौरवपूर्ण अतीत रहा था क्योंकि यहां पर 17वीं, 18वीं शताब्दी में हस्तशिल्प उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में था।

उत्तर प्रदेश में बनारस की साड़ियां, मुरादाबाद के बर्तन, मिर्जापुर के गलीचे, फिरोजाबाद में कांच उद्योग, गोरखपुर व इटावा में हथकरघा उद्योग लघु व कुटीर उद्योग में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन उद्योगों के माध्यम से उत्पादित माल की खपत देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी है जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है और साथ ही साथ ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों के लिए रोजगार प्राप्त हो रहा है।

पशुधन से सम्बन्धित उद्योग

पशुधन प्रदेश की ग्रामीण जनता का महत्वपूर्ण व्यवसाय है तथा प्रदेश की अर्थव्यवस्था में अपना अलग स्थान रखता है। इसी कारण इस पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप 1987-88 में दूध उत्पादन में 5 प्रतिशत, अण्डा उत्पादन में 7 प्रतिशत और ऊन उत्पादन में 6 प्रतिशत वृद्धि हुई। प्रदेश में आपरेशन फ्लड योजना 30 जनपदों में लागू है जहां आनन्द पद्धति पर समितियों का गठन किया गया है जिसके माध्यम से दूध व्यवसाय होता है।

इससे ग्रामीण लोगों की बेरोजगारी की समस्या का निदान तथा लाभप्रद रोजगार मिल सकेगा, जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी। इस योजना से ग्रामीणों के सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊंचा उठाने में सहायता मिलेगी और अनुसूचित जाति, अनु. जनजाति के लोगों का आर्थिक-सामाजिक उत्थान होगा।

मत्स्य उद्योग

ग्रामीण विकास के लिए तथा ग्रामीण लोगों की अर्थव्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए प्रदेश में 24 जनपदों में एक विशाल मत्स्य विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है। वर्ष 1984-85 में मछली उत्पादन 50,000 टन था जो 1987 में बढ़कर 90,000 टन हो गया।

सूती वस्त्र उद्योग

कृषि पर आधारित उद्योगों में तथा ग्रामीण उद्योगों में सूती वस्त्र उद्योग का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सूती वस्त्र उद्योग में हथकरघे तथा शक्ति चालित करघे भी शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सूती खादी बनाने के छोटे-छोटे उद्योग भी शामिल हैं जिससे ग्रामीणों को रोजगार मिला हुआ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हथकरघा उद्योग तथा सूती वस्त्र उद्योग ने पर्याप्त मात्रा में प्रगति की है। प्रथम पंचवर्षीय योजना

काल में जहां हथकरघा से 6 करोड़ मीटर उत्पादन प्राप्त हुआ था वह तीसरी योजना काल में बढ़कर 58 करोड़ हो गया। वर्ष 1988-89 खादी ग्रामोद्योग का अविस्मरणीय वर्ष रहा जिसमें इसका जाल फैलाया गया जिससे 2.5 करोड़ रुपये का माल उत्पादित हुआ और 3.81 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। वैसे हथकरघा उद्योग प्रदेश के लगभग 44 जिलों में फैला है। इसके कुछ बड़े तथा प्रमुख केन्द्र इस प्रकार हैं—गोरखपुर में पलंगपोश व तौलिये बनते हैं। इटावा में भारी कपड़ा पर्दों तथा सोफों के लिए तैयार होता है। गाजीपुर तथा मऊनाथभंजन (आजमगढ़) जहां सूती साड़ियां बनती हैं। अमरोहा, रामपुर तथा आगरा व अलीगढ़ में दरियां बनती हैं। मेरठ जहां कमीज तथा कुर्तों का कपड़ा बनाया जाता है। फैजाबाद तथा बस्ती में बुनकरों के बड़े-बड़े केन्द्र हैं।

सरकार पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से इन केन्द्रों पर संचालित उद्योगों के विकास के लिए कार्य कर रही है।

ग्रामीण विद्युतीकरण तथा वैकल्पिक ऊर्जा

आर्थिक प्रगति के लिए बिजली अनिवार्य है।बिजली से ही कृषि औद्योगिक, विज्ञान तकनीकी क्षेत्र, ग्रामोद्योग की त्वरित प्रगति संभव है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में 3458 करोड़ रु. परिव्यय रखा गया है जिससे प्रदेश की विद्युत क्षमता 540 से बढ़कर 5401 मेगावाट हो जायेगी। ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत 25170 ग्रामों के विद्युतीकरण का लक्ष्य रखा गया। इस प्रकार सातवीं योजना में 74.4 प्रतिशत विद्युतीकृत ग्रामों की संख्या हो जायेगी, इसके अलावा 94978 निजी नलकूपों और पम्पसेटों का उर्जीकरण किया गया है।

गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों को लोकप्रिय बनाने के लिए पंडित नेहरू ने सन् 1956 में कहा था कि "ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों को ढूंढना चाहिए तथा उपयोग में लाया जाना चाहिये।"

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा और ईंधन संकट हल करने के लिए गोबर गैस का काफी महत्व है। रोशनी व खाना पकाने में इसका प्रयोग किया जाता है तथा संयंत्र में बचे हुए गोबर का प्रयोग खाद के रूप में कृषि में किया जाता है। आज ऊर्जा का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। मनुष्यों को लकड़ी, गैस, घासफूस तथा इसके बाद कोयला, पैट्रोल, तेल आदि से ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा के नये साधनों की खोज राष्ट्रीय जीवन और आर्थिक प्रगति के लिए परम आवश्यक है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में ऊर्जा के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है।

शिक्षा का अभाव

ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए शिक्षा का विकास होना अनिवार्य है। शिक्षा के मामले में प्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ था इसी कारण प्रदेश तथा केन्द्रीय सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में शिक्षा को भी शामिल किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक तथा मात्रात्मक सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं। प्रदेश में वर्तमान में 73967 प्राइमरी स्कूल, 14446 जूनियर हाईस्कूल हैं। फिर भी यह संख्या प्रदेश की जनसंख्या तथा साक्षरता में उचित समन्वय स्थापित नहीं करती है। इसी कारण अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोग शिक्षा से वंचित रहते हैं। इसका मुख्य कारण जनसंख्या का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होना है। इसीलिए इस समय सरकार ने गरीब परिवारों को शिक्षित करने तथा सामाजिक स्तर सुधारने के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध किया है।

बेरोजगारी के विभिन्न कारणों में वर्तमान शिक्षा प्रणाली और परम्परागत सामाजिक रूढ़ियां हैं जिसके कारण युवा वर्ग शारीरिक परिश्रम करने से डरता है। बैंकों के माध्यम से बेरोजगारों को ऋण उपलब्ध कराने के परिणाम भी उत्साहवर्धक नहीं रहे हैं।

जनसंख्या का प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि का सीधा प्रभाव अर्थव्यवस्था पर ही पड़ता है। प्रदेश की अर्थव्यवस्था में सुधार तब तक नहीं आ सकता है जब तक जनसंख्या की बाढ़ को नहीं रोका जाता। प्रदेश में जिस गति से विकास हो रहा है इससे अधिक दर से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। 1987 तक प्रदेश की जनसंख्या 12 करोड़ के लगभग पहुंच गई थी जो कि भारत के सभी प्रदेशों से अधिक है। उ. प्र. की कुल जनसंख्या का 82 प्रति. भाग ग्रामों में निवास करता है। प्रदेश में जनसंख्या का प्रति व्यक्ति घनत्व 317 है।

सुझाव

प्रदेश की अर्थव्यवस्था के सुधारने के लिए तथा बेरोजगारी जैसी मूलभूत समस्या से निपटने के लिए ग्रामों में ग्रामोद्योगों के विकास के उपाय करने पड़ेंगे, लघु व कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार को गांवों में कुटीर उद्योग लगाने के लिए विशेष रियायतों की घोषणा करनी चाहिए तथा बड़ी मात्रा में लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना करनी होगी। प्रदेश में कुछ भाग ऐसे हैं जहां निर्धनता अधिक देखी जाती है। यदि वहां पर निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के जीवन स्तर को उठाने के लिए रोजगार के अवसर प्रदान कराना है तो

ग्रामीण अंचलों में संचालित लघु व कुटीर उद्योगों का आधुनिकीकरण करना पड़ेगा क्योंकि ऐसे उद्योगों की स्थापना करने में कम पूंजी निवेश करनी पड़ती है।

सरकार को शिक्षा नीति में आवश्यक परिवर्तन कर इसे रोजगारपरक बनाने का प्रयास करना चाहिये। केन्द्रीय सरकार द्वारा ग्रामीण विकास निगमों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष कार्यक्रम तथा योजनायें निष्पादित की जानी चाहिए। औद्योगिक पिछड़े जिलों में अनेक प्रकार के प्रोत्साहन जैसे कम ब्याज पर ऋण, आर्थिक सहायता, वित्तीय छूट, करों में छूट, सरकारी क्रय में प्राथमिकता आदि आवश्यक है। सरकार के माध्यम से दी जाने वाली सुविधाओं का प्रचार-प्रसार उचित माध्यम से होना चाहिए। राज्य तथा देश में लघु व कुटीर उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे ग्राम्य अर्थव्यवस्था के साथ प्रदेश की अर्थव्यवस्था भी उन्नत होगी और प्रदेश तेजी से आर्थिक विकास कर सकेगा।

प्रवक्ता वाणिज्य विभाग,
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा (बांदा) 210201

अब पांच सौ रुपये बच जाते हैं

जगतनारायण यादव

छपरा—सीवान मार्ग पर मुख्यालय से 35 कि. मी. दूर सारण जिले के एकमा प्रखंड में एक गांव हंसराजपुर है, जिसके टोला गोपाली में 30 वर्षीय युवक श्री गौरी शंकर यादव रहते हैं जो समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत कर्जा लेकर बढ़ईगीरी का काम करते हैं। यादवजी से जब उनके गांव में जाकर पूछा गया कि आपको सरकारी कार्यालय से कर्ज लेने की जरूरत क्यों पड़ी और इस कर्जे से शुरू किया जाने वाला उनका जीवन कहां तक खुशहाल है। इस पर गौरी शंकर का जो जवाब था, उसका निचोड़ इस प्रकार है—शुरू में गौरी शंकर का परिवार सामूहिक था और अपने संयुक्त परिवार में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं था। लेकिन जब गौरी शंकर की शादी हो गई और नई-नवेली दुलहन घर में आ गई तो गौरी शंकर की यह खुशी बहुत दिनों तक बरकरार न रह सकी। कुछ ही दिनों में उनके इस वैवाहिक जीवन के चलते घर में अन-बन हो गई, जिसका परिणाम यह रहा कि गौरी शंकर पत्नी सहित घर से अलग कर दिए गए। अब तो माना उनके आगे पहाड़ ही टूट पड़ा हो और सहसा लगा कि उनकी दुनियां अंधकारमय हो गई है।

इस प्रकार जीवन से निराश और हताश गौरी शंकर अपने गांव के कई प्रमुख लोगों से मिला और यदा-कदा उनसे मदद की याचना करता रहता। लेकिन यह सब कब तक चलता। अंततः कुछ लोगों के कहने पर वह गांव जनसेवक श्री उपेन्द्र कुमार सिंह के पास गया और अपनी सारी परिस्थिति कह सुनाई कि किस प्रकार उसके सभी भाई-बन्धु और परिवार के लोगों ने उसे इस दशा में जीने के लिए छोड़ दिया हैं। बात 1986-87 की है, जब जनसेवक श्री सिंह ने गौरी शंकर की दशा पर तरस खाकर लकड़ी की दुकान करने के लिए उसे समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत तीन हजार रुपये का ऋण दिलवाया। गौरी शंकर ने इस ऋण से शुरू में जलौनी लकड़ी का रोजगार शुरू किया जिसमें फायदा देखते हुए वर्ष 1988-89 में छः हजार रुपये का ऋण और ले लिया। उसके इस धंधे ने काफी जोर पकड़ लिया और ऋण की अदायगी उसने देखते ही देखते कर दी।

अब पांच सदस्यों के अपने परिवार के साथ गौरी शंकर काफी प्रसन्न हैं और उसकी इच्छा अभी और कर्जा लेकर दुकान लगाने की है। जलौनी बेचने से शुरू किया गया यह रोजगार अब काफी बढ़ गया है और अब उसकी दुकान पर तख्ता, चौखट, दरवाजा और कुर्सी आदि भी बनने लगी हैं। लकड़ी के काम में उसकी दक्षता और बने सामानों की सुन्दरता को देखते हुए लकड़ी के सामानों की दुकानों में गौरी शंकर की साख काफी बढ़ गई है और उसे कई स्कूलों को मेज, कुर्सियां और बैंच सप्लाई करने का आर्डर भी मिला है।

यह पूछने पर कि इस धंधे से उसे कितना लाभ हो जाता है, इस पर गौरी शंकर ने अपनी भाषा में जवाब दिया—साहेब, अभी त धंधा के शुरूआते बा, अबही तो सारा पैसा दुकाने में लाग जा त ता, तबहू परिवार के खिला-पिला के पांच सौ रुपया महीना में बचा ही ले तानी। □

क्षमता

डा. केदार राम गुप्त

बाबूजी, आज धान की कुल दो-सौ पचास बोरियां आंगन में आईं। किसी-किसी बोरी में सौ की जगह पचानवें और किसी-किसी बोरी में सौ की जगह एक सौ पांच किलो ग्राम धान था। इस तरह कुल मिला कर दो सौ साठ क्विंटल धान हुआ। बाबूजी, अभी फिलहाल उन्हें कोठियों में करता हूं। इनका चावल तो बाद में ही न बनेगा। अभी एक बजकर दस मिनट हुए हैं और कमियों की दो बजे की छुट्टी होती है खाने के लिए। इतनी देर में हमारा कुल धान कोठियों में चला जाएगा।

'बहूरानी अभी धान को कोठियों में नहीं भरवाओ। मां परसों आ जाएगी। फिर हम यह तय करेंगे कि कितना धान चिवड़ा के लिए रखा जाएगा। जानती हो न इस बार तो समधियौरे में तकरीबन पचास किलो चिवड़ा जाएगा और साथ में केलों की दो खानियां। बहूरानी, केले की खानियां तो बगान में होंगी न।'

'हां बाबूजी, केले की कई खानियां तैयार लटक रही हैं।'

'तो ठीक है बाबूजी, अभी उन बोरियों को दक्खिनबारी ओसारे में ठचवा देती हूं। दस बोरियों को अलग रखवा देती हूं। शायद इतनी बोरियों से तो चिवड़ा बन जायेगा।'

'हां बहूरानी, अगर तुम इतना काम करवा दो तो अच्छा होगा। चलो, मैं भी तो बैठा ही हूं। चल कर देख लेते हैं।'

'बाबूजी आप क्यों तकलीफ करें। आखिर मैं किस काम के लिए हूं। और यह काम तो कोई बड़ा काम नहीं है। मैं भी तो एक अच्छे गृहस्थ के घर से आई हूं। मेरे बाबूजी तो बुला-बुला कर हमसे ऐसे काम करवाते थे। कहते थे कि काम करने से इन्सान को लगता है कि वह घर समाज के किसी काम के लिए है।'

'हां बहूरानी, तुम ठीक कहती हो लेकिन आज की पढ़ी-लिखी लड़कियां तो अपना रख-रखाव और कपड़ा पोशाक पर ही ज्यादा ध्यान देती हैं। काम पर तो उनका ध्यान नहीं रहता। बहुत हुआ तो फैशन के लिए कुछ खाने-पीने की चीजें बना लीं और वह भी किताब बगल में रख कर।'

'लेकिन बाबूजी मेरी समझ में लिखने-पढ़ने का सही उपयोग तब होता है जब व्यक्ति घर के, समाज के, देश के काम में आये। दीन-दुखियों के लिए कुछ न कुछ करें। बाबूजी मैं वकालत पढ़ना चाहती थी ताकि मैं गरीबों की, उनकी जिनके पास पैसे नहीं है और जिन्हें कानूनी मदद की जरूरत है, मदद कर सकूं।'

'दुलहन, कितने ऊंचे तुम्हारे विचार हैं। बबुआ तो वकील हैं ही, तुम भी वकालत पढ़ लो। तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी और उधर बबुआ की भी मदद कर सकोगी। उसके कामों में हाथ बंटा सकोगी, क्यों दुलहन, ठीक तो है न?'

'हां बाबूजी, लेकिन...।'

'लेकिन क्या, तुम वकील बनना चाहती हो बबुआ वकील बना हुआ है, फिर तो बीच में आई बाधा का नाम नहीं होना चाहिये।'

'बाबूजी, आपका आशीर्वाद रहा तो एक दिन मेरी इच्छा पूरी होगी। मैं काम से नहीं भागती।'

'बहूरानी, यह बताने की आवश्यकता नहीं। मैं तो देखता हूं कि तुम्हारी समझ और किसी काम को सिलसिले से करना—दोनों ही बातों में तुम पक्की हो—ऐसी औरत तो क्या आदमी भी इतना पुख्ता कामकाजी नहीं होता।'

'बाबूजी, आज भी बुझावन नहीं आया। परसों ही पेट में दर्द-दर्द कहता हुआ दिन ढलने के पहले ही चला गया था। उसे बुलवाना चाहिए।'

बहूरानी वह तो रात दिन का कमिया है हालांकि उसको कमियौटी से मुक्त कर दिया गया है लेकिन वह कहता है—मालिक बाबू, सारी उमर तो इस हवेली में काम किया है तो अब इस ढहती ठठरी को लेकर किस द्वार जाऊं। गोसांय से यही निवेदन है कि इसी देहरी में दम टूटे। और सुना तुमने बहूरानी, जब से तुमने खेती बारी के कामों में हाथ बंटाना शुरू किया, सभी मजदूर खुश हैं। सभी प्रसन्न हैं।'

'बाबूजी, असल में बात यह है कि सारी खेती बारी तो इन्हीं कमियों-मजदूरों के कन्धे पर चलती है, फिर यदि उनकी देखभाल ठीक से नहीं की जाए तो खेती का काम ही बंद हो जाए या उसमें अनेक तरह की बाधाएं आ जायें।'

'हां बाबूजी, बुझावन को ब्लाक के डाक्टर शर्मा के यहां भेज कर देखवा लेना जरूरी है। गारो वैद्य की गोलियों से उसका रिहाई दर्द जाता नहीं दीखता।'

'बहूरानी, राय जो आज उलटी बेला आ जाते हैं, तो शाम को ही उसे ब्लाक भेज देता हूं। बहूरानी?'

'हां बाबूजी, तुम्हारी वह स्कीम पसंद आयी कि हर कमिया को एक कार्ड दे दिया जाये और उसमें रोज की हाजिरी के अलावा उसके काम के घंटे लिख दिये जाएं, उसकी रोज की कमाई वहां दर्ज कर दी जाए और हफ्ता बारी भुगतान कर दिया, या जब जिसकी इच्छा हो अपना पैसे ले जाए। जलखई की तो कोई बात नहीं, वह तो हर कमिया को नाप कर रोज दे ही दिया जाता है।'

'बाबूजी इससे हिसाब-किताब साफ रहेगा। मजदूरी को लेकर जो इतनी पूछताछ इंस्पेक्टर करता रहता है और हमें माथा-पच्ची करनी पड़ती है, उससे छुट्टी मिल जाएगी।'

'वाह दुलहन वाह। इसको कहते हैं पढ़ाई का स्वाद।

'लेकिन बाबूजी मां इस लिखा-पढ़ी को बेकार काम समझती है। कहती हैं इस हवेली में और रामपुर कामथ में कुल मिला पचास से भी अधिक मजदूर और कमिया हैं। सबका हिसाब-किताब कार्ड पर करना पार नहीं लगेगा।'

'दुलहन, छोड़ो मां की बात। मैं उन्हें समझा दूंगा। उन्हें क्या मालूम कि आज दुनिया का कारोबार बिना बखेड़े के नहीं चलता।'

'बहूरानी जरा मेरे पास आओ तो।' सरला अपने श्वसुर के पास गई तो रायजी का मन गदगद हो गया। सरला ने झुक कर अपने श्वसुर के पांव छुए। रायजी को यह उमीद नहीं थी कि उनकी बहू में इतना अधिक शील और नम्रता है। लेकिन सरला जब प्रताप नारायण राय की पत्नी और नरसिंह नारायण की पतोहू बन कर महेशपुर की बड़ी हवेली में आई तो उसे भरपूर चाहत और स्वागत नहीं मिला। छरहरी देह, तीखी नाक, लंबी आकृति, बड़े और चमकीले-बाल, शालीनतापूर्ण पहरावा और नम्रतापूर्ण बोली भी पर्याप्त नहीं थी कि वह सब के मन जीत सके। यह बात सही है कि श्वसुर नरसिंह नारायण राय सरला के बारे में सोच-सोच कर मन ही मन आह्लादित होते। उन्हें पता था कि उनकी स्त्री और प्रताप की मां को सरला का श्यामला रंग जरा भी नहीं सोहाता। 'बेटे-बेटियां काली और सांमता होंगी खानदान को काला कर दिया इस बहू ने।' हालांकि उसका बेटा गोरा चिट्टा भरपूर लंबाई का कद्दावर जवान है। सरला को प्राय: अपनी सास से उपेक्षा के ही भाव मिलते। वह कुछ पूछती तो वह कहती—बहू जैसे रुचे कर लो। मुझे इसमें कुछ कहना नहीं। तुम पढ़ी-लिखी हो, तुमने डिग्री पाई है, मैं थोड़े ही स्कूल या कालेज गई हूं।' सरला को लगता जैसे उसने श्यामला रंग पाकर कुछ अक्षम्य अपराध किया है। एक दो बार उसकी सास ने कहा—बहू, तुम हजार पढ़ी हो या हजार तुम्हारे अंदर बुद्धि और ज्ञान है जैसा कि तुम्हारे श्वसुर कहते अघाते नहीं लेकिन औरत का रंग एक चीज है जो उसके आदमी को अपनी ओर बांधे रहता है और वह चीज विधाता ने तुम्हें दी है नहीं। अब तुम अपने भाग्य को लेकर रोओ। मेरा खानदान तो काला कर ही दोगी। लगता जैसे किसी ने उसे तीरों से छेद दिया है। उसने बी. ए. तक की शिक्षा पाई, बी. ए. में उसने अर्थशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रतिष्ठा पाई है। संगीत के लिए उसने स्वाभाविक रुचि और क्षमता पाई है। वाद्य और कंठीय संगीत दोनों के माध्यम से वह लोगों को बांधे रख सकती है लेकिन उसका श्यामला रंग... और सोचते-सोचते जैसे उसका मन वितृष्णाओं से भर जाता। वह आदम कद आइने के पास जाती और उन बिन्दुओं को अपने में ढूंढने की चेष्टा करती जो संतोष दे सकें। और अक्सर उसे संतोष मिल भी जाता क्योंकि वह कलात्मक रुचियों की व्यक्तित्व है और कला को परखने की उसमें दृष्टि भी है। 'सरला, मेरी आंखें जो तलाशती हैं वह तुम में नहीं है, और मुझे खेद है कि मैं....।'

'लेकिन क्या आपने यह तलाशने की कोशिश की है जो मुझ में है?'

मुझे इतनी फुर्सत नहीं सरला कि मैं किताब की तरह तुम्हें पढ़ूं और कुछ बिन्दु ढूंढ निकालने की चेष्टा करूं। मैं तो एक व्यस्त वकील हूं। यूं ही तो मोटी किताबों और मोटी-मोटी फाइलों से अपना मगज पचाया करता हूं। और इस तरह प्रताप सप्ताहांत में अपने घर आता तो अपनी पत्नी की ओर से अनन्यमनस्क ही रहता। नास्ता करता, भोजन करता—लेकिन कामों में उसे कुछ आगाह नहीं होता। सरला भरसक चेष्टा करती कि प्रताप उसकी ओर मुखातिब हो, लेकिन बेकार। बालू पर हल चलाने से फायदा ही क्या।

और उस दिन जब तीन दिनों के लिए प्रताप अपने गांव महेशपुर आया तो अपने साथ आल इंडिया रिपोर्टर की कई जिल्दें साथ लेता आया और आते ही उन जिल्दों से केसों के लिए टिप्पणियां लेने में व्यस्त हो गया। उसे जायदाद सम्बन्धी झगड़े के सम्बन्ध में संदर्भ के मामलों को नोट करना था। प्रताप जिल्द के पन्ने उलटता, पृष्ठ संख्या नोट करता और फिर दूसरे मामलों के लिए अन्य पृष्ठों की तलाश करता। सरला ने देखा कि यह काम प्रताप को कुछ बोझिल और अरुचिकर प्रतीत हो रहा है।

'ऐसा क्यों नहीं करते कि आप मुझे पृष्ठ संख्या और मामला संख्या और संबोधित न्यायलय का नाम लिखा दें और फिर आगे बढ़ें।'

'सरला यह काम जरा टेढ़ा है। शायद तुम नहीं कर सकोगी।'

'आप मुझे मौका तो दीजिए। क्या मैं इतना अदना-सा काम नहीं कर सकती? और प्रताप ने नोट करवाना शुरू किया तो सरला ने आसानी से यह काम कर दिया। इसी बीच प्रताप अपने पिता के बुलाने पर वहां गया, लेकिन सरला ने इसी बीच दो तीन संदर्भों को देख कर नोट कर लिया। प्रताप आया तो सरला की इस युक्ति पर अचरज से भर गया। 'वाह! तुमने तो ठीक कहा था। तुम, जितना मैं समझता था, उससे ज्यादा योग्य हो।' देखिए, शायद आपके कहने में कुछ सच्चाई हो।' और अब प्रताप को नोट कराए गए मामलों के सारांश लिखने थे। सरला ने सुझाव दिया कि वह बोलते जायें और वह लिखती जाएगी। प्रताप ने इसे मान लिया क्योंकि वह सरला की क्षमता से अवगत हो चुका था। इसी बीच प्रताप का मित्र रघुवीर कुलश्रेष्ठ आया। उन दोनों को अपने मित्र सुधाकर के गांव जाना था क्योंकि सुधाकर के बच्चे का प्रथम जन्म दिवस का उत्सव था। प्रताप ने जाने से इन्कार कर दिया लेकिन आखिर प्रताप को अपना मन बनाना ही पड़ा। 'आप जाइये। मैं सारे संदर्भों के सारांश नोट कर लूंगी।' 'क्या तुम वह कर सकोगी?' मौका दीजिए तो सही। 'और प्रताप यह दायित्व देकर अपने मित्र के गांव चला गया। वह रात गये लौटने वाला था। लेकिन खाते-पीते बहुत देर हो गई। रघुवीर के पिता ने लौटने की अनुमति नहीं दी। प्रताप को जितनी खुशी हुई थी अपने मित्र के यहां उत्सवपूर्ण रात बिताने में उस रात को नहीं लौट सकने का उतना ही अधिक गम हुआ। वह बार-बार सोचता कि पता नहीं सरला ने सारे के सारे केस नोट किये होंगे कि नहीं। वह इन्हीं आशंकाओं में डूबता उतरता वापिस आया। 'सरला, मुझे अफसोस है कि रात को लौट नहीं सका। क्या तुमने मेरा काम कर दिया है?' 'आप देख लीजिए न।' मैंने पांच मामलों की बातें और जोड़ दी हैं लगता है कि मेरे द्वारा अतिरिक्त उल्लेख भी शायद आपके काम आये।'

और जब प्रताप ने अपनी अभ्यस्त आंखों से निरादृत पत्नी सरला के कार्य को देखा तो वह अवाक रह गया। वह उछल कर अपने टेबल से आया और सरला को अपनी बाहों से बांध लिया। 'सरला, मेरी अच्छी सरला, आज तुमने साबित कर दिया कि तुममें वह सारी चीजें हैं जो किसी भी पति के मन में गर्व के भाव भर सकती हैं। सरला, ओह प्यारी सरला।' और प्रताप ने सरला को मानों अपने से एकीकृत कर लिया। आज उसे वह सब कुछ मिल गया जिसे उसकी आंखें अब तक देख नहीं पाई थीं। सरला ने केवल यह शब्द कहे—'मेरे वकील साहब, आज आपको एक खोये केस के पक्ष में प्वाइंट मिल गये।'

'नहीं सरला, मैं केस जीत गया हूं। खुशियां मनाओ।'

बाद में वह अपने पिता के पास जाकर बोल उठा—बाबूजी सरला वाकई में विरला है। आपने ठीक ही कहा था।

अरुण आवास
शिव शंकर सहाय पथ
भागलपुर-812001

ऊसर भूमि सुधार—जहां चाह वहां राह

डा. औंकार सिंह तोमर

डा. राजेन्द्र प्रसाद

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल द्वारा वर्ष 1979-80 में हरियाणा राज्य के करनाल जिले में प्रयोगशाला से किसानों के खेतों तक और इसके अतिरिक्त 1985 में एक दूसरा कार्यक्रम संक्रियात्मक अनुसंधान परियोजना शुरू किया गया। इन प्रोग्रामों में मूनक गांव जिला करनाल (हरियाणा) को चुना गया जहां अधिक से अधिक ऊसर समस्या से क्षेत्र बेकार पड़ा था। ऊसर भूमि वाले ग्रुप के मध्यम वर्ग के 150 किसानों के खेतों में के. मृ. ल. अ. सं. के वैज्ञानिकों द्वारा भूमि सुधार संबंधी प्रदर्शन किए गए ताकि ऐसी भूमि को सुधार कर उनमें कृषि की जा सके। इस कार्यक्रम की सफलता की जानकारी मिलने पर किसानों का एक बड़ा वर्ग इस ओर आकर्षित हुआ। श्रीमती शानो देवी भी एक ऐसी ही किसान महिला हैं।

ऊसर (कल्लर) मृदाओं के प्रमुख गुण

- उचित जल निकास व्यवस्था का न होना।
- भूमि का अधिक क्षारांक (लगभग पी. एच. 10.0)।
- इन मृदाओं की भौतिक रचना खराब होना, जैसे कि पानी रिसने की दर कम होना, सूखने पर दरारें पड़ जाना और सिंचाई के बाद बहुत कीचड़ हो जाना, इत्यादि। ऐसी भूमियों में एक मीटर सतह के आसपास कंकरीली सतह का होना।

असुविधाजनक ऊसर मृदाएं

श्रीमती शानो देवी जो अपने स्तर पर भूमि सुधार करना चाहती थीं ने अपनी दो एकड़ 'ऊसर' जमीन को अपनी जानकारी अनुसार समतल करके पड़ोसी के ट्यूबवैल से सिंचाई की। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण दो एकड़ में केवल दो टन जिप्सम का ही प्रयोग किया। उसने खरीफ में धान तथा रबी में गेहूं लगाया। लेकिन ऊसर मृदाओं के कारण वहां धान एवं गेहूं, दोनों की ही उपज बहुत कम हो पायी। धान की औसत उपज केवल 12 क्विंटल और गेहूं की 5.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर थी।

यद्यपि यह महिला अपनी बंजर भूमि से बहुत निराश हो चुकी थीं लेकिन उसने तथा उसके परिवार ने इस भूमि से पूर्ण आशा अभी नहीं छोड़ी थी क्योंकि यही तो उनके परिवार के जीवन यापन का एकमात्र साधन था। 1983 में उसने रुपये उधार लेकर अपने खेत में बिजली से चलने वाला एक ट्यूबवैल लगाया। 1984 में हरियाणा भूमि सुधार एवं विकास निगम के डिपो से चार टन जिप्सम, 75 प्रतिशत छूट पर लिया जिसे दो एकड़ भूमि में डाला और धान की आई. आर.-8 किस्म लगाई। किन्तु निराशा ही हाथ लगी। उपज अच्छी न हो सकी। इस निराशा के कुछ एक मुख्य कारण जो श्रीमती शानो देवी ने महसूस किये थे, वे हैं:

1. खेतों को अच्छी तरह समतल नहीं किया गया था।
2. डाली गई जिप्सम की मात्रा काफी कम थी।
3. विशेष सस्य एवं संवर्धन अभ्यासों की पूर्ण जानकारी नहीं थी। लगातार उपज खराब होने से उस परिवार को भारी आर्थिक धक्का लगा।

के. मृ. ल. अ. सं. के वैज्ञानिकों से सम्पर्क

अप्रैल, 1985 में केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने मूनक गांव में विशेष लक्ष्यों को लेकर एक संक्रियात्मक अनुसंधान परियोजना कार्यक्रम शुरू किया जिसके निम्न उद्देश्य थे:

1. 'ऊसर' मृदाओं के सुधार तकनीक को किसानों के खेतों पर करके दिखाना।
2. आर्थिक दृष्टि से लाभकारी फसलें लगाना।
3. बड़े पैमाने पर भूमि सुधार में किसानों को आने वाली तकनीकी, आर्थिक तथा प्रबंध इत्यादि कठिनाइयों की जानकारी लेना तथा उन कठिनाइयों के समाधान करने के उचित प्रयास करना, इत्यादि।

इस परियोजना सर्वेक्षण के दौरान ही इस संस्थान के वैज्ञानिक श्रीमती शानो देवी के पति से मिले और उन्हें ऊसर (कल्लर) भूमि सुधार के संवेष्ठित कार्यक्रम (पैकेज प्रोग्राम) की जानकारी दी और सलाह दी कि मृदा परीक्षण करवा कर तथा भूमि को समतल करके बताई गई जिप्सम की मात्रा का उपयोग करें। इसके साथ ही उचित कार्यक्रम अपनाकर धान-गेहूं-ढैंचा (हरी खाद के लिए) की खेती करें।

श्रीमती शानो देवी के पति ने इस कार्यक्रम को अपनाने में कठिनाई बताई क्योंकि उनकी आर्थिक दशा इतना खर्च सहन करने के काबिल नहीं थी। फिर भी शानो देवी ने यह कार्यक्रम अपनाने की हां कर दी। वह वैज्ञानिकों द्वारा बताई विधि पर परा विश्वास रखती थी। उसने इस संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई तकनीक अपनाकर नवीन आशा से काम शुरू किया। उसने गांव के महाजन को अपने जेवर गिरवी रख कर पैसा उधार लिया और बताई गई जिप्सम की अधिक मात्रा का इन्तजाम किया। साथ ही अन्य कृषि प्रक्रियाएं भी अपनाई।

मृदा सुधार

मृदा परीक्षण के आधार पर मालूम हुआ कि मृदा (0-15 सै. मी. गहराई तक) का पी. एच. मान 10.0 था जिसके लिए क. मृ. ल. अ. सं. द्वारा 12.5 टन जिप्सम प्रति हैक्टेयर डालने की सिफारिश की गई। श्रीमती शानो देवी ने 1985 में खरीफ में जिप्सम की आवश्यक मात्रा का उपयोग किया तथा धान की फसल के लिए निम्नलिखित तकनीक अपनाई:

— भूमि समतल सही ढाल बना कर।

— जिप्सम के उपयोग के बाद खेत में 10 दिन तक पानी खड़ा रखा।

— पहली फसल धान की उगाई तथा पी. आर.- 107 किस्म लगाई गई।

— भूमि को दलदली किये बिना ही धान की पौध की रोपाई की।

— प्रति हैक्टेयर भूमि में 150 किलो नाइट्रोजन तत्व तथा 25 किलो ग्राम जिंक सल्फेट का उपयोग किया गया।

— साथ ही दूसरे सस्य वैज्ञानिक कार्यक्रम भी अपनाए।

पहली फसल से 36.2 क्विंटल प्रति हैक्टेयर धान की पैदावार हुई। 1985-86 में ही रबी की फसल में गेहूं की एच. डी.-2329 किस्म लगाई गई जिसमें श्रीमती शानो देवी ने निम्नलिखित तकनीक अपनाई :

— संशोधित अवस्था में गेहूं की बुआई।

— बीज की अधिक मात्रा का प्रयोग—125 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर बीज का पूरे खेत में समान वितरण किया गया।

— 150 किलो नाइट्रोजन का प्रयोग। इस मात्रा का 50 प्रतिशत बुआई से पहले और शेष का दो भागों में बुआई से 21 दिन बाद तथा जब फल निकलने लगे। 25 किलो जिंक-सल्फेट प्रति हैक्टेयर का शुरू में प्रयोग।

— गेहूं की अधिक बार हल्की सिंचाई की गई। यह भी ध्यान दिया गया कि गेहूं के खेत में कहीं पानी अधिक समय तक न रुके।

गेहूं की पहली फसल 12 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हुई। खरीफ तथा रबी की भरपूर फसल से श्रीमती शानो देवी में नई आशा का संचार हुआ। अब वह हर वर्ष धान-गेहूं की काफी अधिक उपज ले रही है। अब वह गर्व से कहती हैं कि जेवर की उसे कोई चिन्ता नहीं। उसकी 'बंजर' धरती ने उसे वो सोना दिया जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उसका कहना है कि ये केवल जिप्सम का प्रभाव नहीं, बल्कि किए गए संवेष्ठित अभ्यास का करिश्मा है। अब वे दिन दूर नहीं जब मैं अपने जेवर वापिस ले सकूंगी और हर वर्ष इसी प्रकार अच्छी उपज से अपने परिवार को एक मजबूत आर्थिक स्थिति में ला सकूंगी। इस परिवार ने अब एक गाय और दो भैंस भी खरीद ली हैं ताकि खेती के साथ-साथ सहायक व्यापार भी शुरू कर सकें। परिवार के सदस्य श्रीमती शानो देवी को 'देवी अन्नपूर्णा' मानते हैं। अगर वह आगे बढ़ कर इस कार्यक्रम को अपनाने के प्रबंध न करती तो शायद यह भूमि कभी भी इतनी अधिक उपज न देती। यह एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसने अपनी कड़ी मेहनत तथा वैज्ञानिक तरीके अपना कर, 'ऊसर' भूमि से भरपूर फसल का सपना साकार किया। आसपास के गांवों के किसान भी अब 'ऊसर' भूमि पर खेती कर अधिक से अधिक लाभ उठा रहे हैं। श्रीमती शानो देवी ने यह सच कर दिखाया "जहां चाह वहां राह।"

यह किसी एक किसान की कहानी नहीं बल्कि देश के विस्तृत भाग में 'ऊसर' भूमि जो उपयुक्त तकनीक के अभाव में बेकार पड़ी थी, अब बहुत संख्या में किसान उसे सुधार कर अच्छी उपज ले रहे हैं। अनुमानतः हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के गंगा तटीय क्षेत्र की 28 लाख हैक्टेयर भूमि जो बंजर पड़ी थी, राज्य कृषि विभागों के आंकड़ों के अनुसार पिछले 12 वर्षों में 4.7 लाख हैक्टेयर भूमि को सुधारा जा चुका है तथा उस पर उत्पादन होने लगा है। अब ऐसी सुधरी हुई मृदाओं में निश्चित रूप से 25 लाख टन प्रति वर्ष अतिरिक्त अनाज होता है। यद्यपि इन मृदाओं की सीमित क्षमता को देखते हुए अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है—फिर भी अभी जो अनुसंधानों के आधार पर 'ऊसर' भूमि सुधार कार्य प्रणाली उपलब्ध है उससे ऐसी मृदाओं को सुधार कर उनका कृषि उपयोग बढ़ाने के लिए नए द्वार खुलेंगे।

केन्द्रीय मृदा अनुसंधान संस्थान,
करनाल, हरियाणा

पंचायत परिषद् और नारी

मीता प्रेम शर्मा

एक समय था जब नारी को ऐसा मूक प्राणी समझा जाता था, किन्तु आज वही नारी अपना सिर ऊंचा किए हर क्षेत्र में भाग लेकर चुनौतीपूर्ण कार्य करने में सफल हो रही है। वह घर-परिवार को सुधारने के साथ-साथ पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिला कर सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी योगदान दे रही है। किन्तु ग्रामीण नारी की स्थिति में अभी विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

अब समय आ गया है जब एक जागृत नारी, गांव की दूसरी सोई हुई नारियों को अपनी बुलंद आवाज से उठाएगी और इस कार्य को वह एक बड़े पैमाने पर करेगी। सदियों से अपने प्रति हो रहे अत्याचार को भाग्य की नियति मान कर ग्रामीण नारी जीवन-भर घुटती ही नहीं रहेगी। उसकी जागृति अवश्य होगी।

'ग्राम-पंचायत' ग्राम की उन्नति और शांति की आधारशिला है तथा राष्ट्रीय विकास की कुंजी है—'गांव की उन्नति'। यह उन्नति तभी सम्भव है जब हर गांव की नारी, जागृत, समझदार, शिक्षित, अपने कर्तव्य और अधिकार के प्रति सचेत होगी। जब नारी किसी भी क्षेत्र में भाग ले सकती है तो पंचायत-परिषद् में भाग लेकर, अपना कौशल दिखाने में सफल होगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। ग्राम पंचायत में जो महिलाएं चुनी जाएंगी, वह सर्वसम्मति से आने के कारण अपने कार्य को अधिक से अधिक न्यायपूर्ण-गति से पूर्ण करने की चेष्टा करेगी और इस कार्य की सफलता, स्वयं उनकी सफलता होगी। पिछले दिनों अखबार में समाचार था कि मध्यप्रदेश के एक गांव की पंचायत परिषद में केवल महिलाएं ही न्याय प्रणाली चला रही हैं तथा सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। अब महिलाओं को पंचायत परिषद् में भाग लेने हेतु घर की चाहरदीवारी छोड़, साहस व आत्मबल के साथ आगे आना होगा। केवल सरकार ही हर समस्या का समाधान नहीं कर सकेगी, इसके लिए स्वयं महिलाओं को भी जागृत होना होगा। यही जागृति अंधविश्वास की जड़ों को उखाड़ सकेगी। एक जागृत नारी जादू-टोना, झाड़-फूंक के चक्कर में फंस अपनी संतान या परिवार के किसी भी सदस्य को अकाल का ग्रास न बनने देगी। साथ ही परिवार-नियोजन का अर्थ व महत्व समझ कर उसे अपने जीवन में अपनाने के साथ-साथ दूसरी नारियों को भी समझाएगी। इस प्रकार बेटे-बेटी का फर्क समाप्त होगा, बच्चों की अच्छी व समान परवरिश होगी। बेटी और बहू में अन्तर करके, बहू का जीवन नारकीय न होगा। परिणामतः एक सुखद वातावरण पल्लवित होगा और पल्लवित होंगी घर की खुशियां।

एक स्त्री ही घर की आन्तरिक परेशानी का कारण अच्छी तरह समझ सकती है। इसी कारण घरेलू झगड़े, स्त्री-पुरुष के झगड़े, धन-जायदाद के झगड़े, निपटाने में स्त्री ही अधिक सफल होगी। पंचायत में उठने-बैठने से घर की बहू-बेटियां समझदार व जागरुक होंगी साथ ही उनके आत्मबल और स्वाभिमान की जागृति होगी, विचारों में परिवर्तन होगा। फलस्वरूप कुरीतियों का विनाश होगा, जैसे कि—छोटी उम्र में विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, अशिक्षा आदि। पंचायत परिषद् में भाग लेने हेतु स्त्रियां शिक्षित होंगी और पढ़ने-लिखने की तीव्रतम इच्छा विकसित होगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्रौढ़-शिक्षा सहायक होगी और तब हर नारी कमर कस कर घर और बाहर संभालने के लिए गांव-गांव में तैयार हो सकेगी। गांव की खुशहाली का ध्यान रखती नारी अपने कार्य में जुट जाएगी। शिक्षित नारी, संकट आ पड़ने पर साहसपूर्वक सामना करेगी। कर्ज के भार से दबा परिवार, अंगूठा छाप कर और अधिक कर्ज में नहीं डूबेगा। नारी का दुर्भाग्य—'विधवापन' भी उसका विनाश नहीं कर पाएगा। वह अपने पैरों पर खड़ी होकर आत्मसम्मान पूर्वक जीवन-यापन कर सकेगी। किसी का मुंह ताकना आवश्यक न होगा।

जिस प्रकार एक नारी घर का बजट बना कर, सीमित आय में घर का खर्च चलाती है, उसी प्रकार गांव के बजट में भी हिस्सा लेकर गांव की प्रगति के रास्ते खोज लेगी। जब वह पंचायत में हिस्सा लेगी तो अपने गांव में सर्वसम्मति से कम से कम एक अस्पताल, डाकघर, खेलने का मैदान, छोटा-सा पुस्तकालय आदि अवश्य चाहेगी और अपने सीमित बजट से अधिक से अधिक उपयोगिता प्राप्त करेगी। वात्सलय से भरपूर नारी ही समझ सकती है कि बच्चों की भलाई किन खेलों या प्रतियोगिताओं द्वारा सम्भव है। वैसे भी नारी जन्म से ही कला के प्रति समर्पित होती है। इसी रुचि के कारण वह अपना घर-आंगन सजाती-संवारती है। इसी कला को वह नाट्यशाला, नृत्यशाला, खेल प्रतियोगिता द्वारा उभार कर लाएगी। इस प्रकार गांव के बच्चे अपनी कला को प्रदर्शित

करेंगे, गन्दी आदत, बुरी लत आदि से छुटकारा पाकर कंचे खेलने, गुल्ली-डंडा खेलने तक ही सीमित न रह जाएंगे।

एक बुजुर्ग नारी प्रतिनिधि बन जब दूसरी नारियों को अपनी भाषा में शिक्षा, सफाई, परिवार-नियोजन आदि का अर्थ बताएगी तो उसका जो प्रभाव होगा, वह किसी पुरुष नेता या समाज सेविका का नहीं हो सकेगा। नारी ही नारी की भावना को समझ उसे उसके अन्तर्मन तक छू सकने में समर्थ हो सकती है। वही समझा सकेगी कि एक परिवार में एक शिक्षित नारी होने का अर्थ है—घर में ही एक शिक्षक होना, जो कि बच्चों को शिक्षित कर सकता हो। इससे मानसिक उत्थान तो होगा ही घर का वातावरण भी स्वच्छ और मधुर होगा।

सब कुछ होते हुए भी सफाई का अपना ही स्थान है। जब तक गांव में सफाई का माहौल नहीं होगा, छूत की बीमारियों से छुटकारा सम्भव नहीं है। सफाई के प्रति नारी का जागरूक होना स्वयं ही सिद्ध है क्योंकि इसी गुण के कारण उसका घर-आंगन चमकता है। जैसे वह अपने घर को संवारती है उसी प्रकार गांव को भी साफ-सुथरा रखना, अपने कर्तव्य का एक अविभाज्य अंग समझेगी। स्त्री ही अपने स्नेह भरी डांट या सलाह द्वारा गृहस्थी में व्यस्त नारी को खींच कर कुटीर उद्योग में लगा सकेगी। कुटीर उद्योगों से जब आय होगी तब उनका जीवन-स्तर भी सुधरेगा। समय को गप्प-बाजी या चुगलीबाजी में नष्ट न कर कुछ उपयोगी कार्य करने वाली नारी का व्यक्तित्व और भी निखर कर सामने आएगा। जब नारी महाजन और बिचौलिए को माध्यम न बना स्वयं हिसाब करेगी तब उसके द्वारा निर्मित वस्तु मिट्टी के मोल न जाएगी।

वास्तविक भारतीय सभ्यता की उन्नति तो भारत के गांवों से ही प्रारंभ होगी और यह कार्य अब ग्रामीण नारी अपने बुद्धि कौशल द्वारा शरीर और मनोबल द्वारा समाज और देश को कर दिखाएगी। जब गांव में हर प्रकार की सुविधा होगी तो पलायनवाद की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाएगी और इस प्रकार गांव शहर की ओर दौड़ कर, शहर में भीड़ नहीं करेंगे, बल्कि स्वयं को शहर की उन्नति के समकक्ष ला खड़ा करेंगे। इसे हम नारी और पंचायत परिषद की विजय ही कहेंगे।

जी-1/डी, डी. डी. ए.,
मुनीरका, नई दिल्ली-67

परिश्रम ही परिवार का विकास

रा. कु. बिस्वाल

बिलासपुर जिले के पाली विकासखण्ड में एक आदिवासी गांव है—कोटापानी, पहाड़ियों की गोद में बसा हुआ यह गांव 90 प्रतिशत हरिजन आदिवासी वर्गों से परिपूर्ण है। इन लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। दूसरे गांव की तरह इस गांव में भी पिछड़ापन, अशिक्षा और गरीबी व्याप्त है, परन्तु गांव के लोग परिश्रमी हैं।

ग्राम-कोटापानी का एक गरीब किसान जिसका नाम श्री हेमसिंह है उसके परिवार में दो सदस्य हैं और मात्र दो एकड़ जमीन है, उस दो एकड़ जमीन में जितनी आमदनी होती है, मुश्किल से उसके परिवार का 5-6 माह गुजारा होता है। जमीन का काम बंद होने के बाद श्री हेमसिंह मजदूरी करता था और साइकिल पर दाल, नमक, तेल आदि घरेलू उपयोग की चीजों को रखकर गांव-गांव में बेचता था।

कभी-कभी भगवान भी मानव का रूप लेते हैं, गांव के कुछ शिक्षित लोगों की सहायता से पाली ग्रामीण बैंक से गांव में किराना दुकान खोलने के लिए अप्रैल 89 को 5000 रुपये मिले।

वह गरीब किसान, जो अपने परिवार के लिए मजदूरी करने जाता था आज एक किराना दुकान का मालिक है। किराना दुकान के साथ-साथ श्री हेमसिंह जमीन की भी देख-रेख करते हैं। श्री सिंह प्रतिमाह दुकान से 400 रुपये का लाभ उठाते हैं और 100 रुपये पाली ग्रामीण बैंक में पटा देते हैं।

श्री हेमसिंह बताते हैं कि शासन के सहयोग से जो किराने की दुकान खोली है उससे उनका परिवार का गुजर बसर आसानी से होने लगा है। चार बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेज रहे हैं और वे बताते हैं कि मैं अपने बच्चों को एक शिक्षित नागरिक बनाने के लिए प्रयास करूंगा, अगर कोई भी व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ मन लगाकर परिश्रम करेगा तो वह अपने परिवार के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा। □

आने वाले वर्षों में गांवों में गरीबी और बेरोजगारी दूर करने तथा कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए भूमि सुधारों की गति में तेजी लाना अत्यन्त आवश्यक है।

आर.एन. 708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN 708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित